खा लिया, इसके फलस्वरूप उन्होंने शूद्र वर्ण में जन्म प्राप्त किया। करुष के पुत्र कारुष नाम से प्रसिद्ध थे, वे सभी युद्ध में दुर्दमनीय थे। नाभाग अरिष्ट का पुत्र भलनन्दम बहुत विद्वान तथा सभी क्षत्रियों से अधिक बलवान शाली था। भलनन्दन का पुत्र बलशाली प्रांशु था, उस प्रांशु के एक पुत्र प्रजानि नाम से उत्पन्न हुआ। प्रजानि के खनित्र नाम का प्रतापी पुत्र पैदा हुआ, उस खनित्र के क्षुप नाम का महायशस्वी पुत्र पैदा हुआ, विंश के धार्मिक तथा कल्याणकारी विविंश नाम के पुत्र पैदा हुये, विविंश के धर्मात्मा खनिनेत्र नाम के पुत्र पैदा हुए। खनिनेत्र के करन्धम नाम के पुत्र पैदा हुये, ये करन्धम त्रेतायुग के प्रारम्भ में स्थित थे करन्धम के अविक्षित नाम के प्रतापशाली पुत्र पैदा हुए। अविक्षित ने अपने गुणों से अपने पिता का अतिक्रमण किया, उनके पुत्र धर्मात्मा चक्रवती राजा मनुत्त नाम के पैदा हुये जिन्होंने संवर्त्त नाम की ऋषि की प्रेरणा से अपने मित्रों तथा परिवार वालों के साथस्वर्ग प्राप्त किया। इस कार्य में संवर्त्त और बृहस्पति के बीच में एक लड़ाई खड़ी हो गई; उस यज्ञ की समृद्धि को देखकर बृहस्पति जी क्रोधित होगये। संवर्त के निर्विघ्न यज्ञ समाप्त कर देने पर तो बृहस्पति बहुत ही क्रुद्ध हुये, सभी लोकों के नाश होने की स्थिति देखकर देवताओं ने तथा प्रजापति ब्रह्माजी ने बृहस्पति जी को प्रसन्न किया। चक्रवर्ती राजा मनुत्त के नरिष्यन्त नाम के पुत्र पैदा हुये, नरिष्यन्त के दम नाम का पुत्र पैदा हुआ। वह राजा दम कठोर दण्ड देता था। दम के केवल नाम का पुत्र पैदा हुआ, केवल के बन्धुमान नाम का पुत्र पैदा हुआ। बन्धुमान के धर्मात्मा वेगवान नाम का पुत्र पैदा हुआ। वेगवान के बुध नाम का पुत्र पैदा हुआ और पुत्र के तृणविन्दु नाम का पुत्र पैदा हुआ, यह तृणविन्दु राजा त्रेतायुग के आरम्भ-काल में विराजमान थे। तृणविन्दु के इविड़ा नाम की कन्या थी, वह कन्या विश्रवा की माता हुई, इसके विशाल नाम का धार्मिक पुत्र पैदा हुआ। इसी धार्मिक विशाल राजा ने विशाला नाम की पुरी को

बसाया था, राजा विशाल के हेमचन्द्र नाम के महा बलवान पुत्र पैदा हुये। हेमचन्द्र के सुचन्द्र नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा सुचन्द्र के धूमाश्व नाम का पुत्र पैदा हुआ, राजा धूमाश्व के सृंज्जय नाम का परम विद्वान पुत्र पैदा हुआ। राजा सृंज्जय के सहदेव नाम का परम प्रतापी पुत्र हुआ। सहदेव के कृशाश्व नाम का पुत्र पैदा हुआ ये परम धार्मिक राजा थे। कृशाश्व के सोमदत्त नाम का प्रतापी तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ। राजा सोमदत्त के जनमेजय नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा जनमेजय के प्रमति नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा तृणविन्दु की कृपा से यह विशाल नगरी के सभी राजा दीर्घायु वाले धार्मिक प्रकृति के और महात्मा हुए।

राजा शर्यीति के दो सन्तान हुईं उनमें एक पुत्र और एक कन्या थी पुत्र का नाम आनर्त था और कन्या का नाम सुकन्या था, कन्या सुकन्या महर्षि च्यवन को ब्याही थीं। राजा आनर्त के रेव नाम का पुत्र पैदा हुआ। आनर्त सभी राज्य का तथा कुशस्थली का स्वामी था। रेव के रैवत नाम का धार्मिक पुत्र पैदा हुआ। रैवत नाम का पुत्र ककुद्मी नाम से प्रसिद्ध हुआ। ककुद्मी अपने सभी भाइयों से बड़े थे इन्होंने भी कुशस्थली में राज्य किया। एक समय ये अपनी कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा जी के पास संगीत सुनने के लिए गये थे। वहां पर ब्रह्मा जी के पास केवल दो घड़ी विश्राम किया था। किन्तु ब्रह्मा जी की वह दो घड़ी मानव वर्षमान से अनेक युगों की थी। वहां से राजा युवाअवस्था में ही अपनी पुरी को वापस लौट आये तो इन्होंने देखा कि उनकी पुरी में यदुवंशियों के राजा राज्य कर रहे थे। उसके चारों तरफ बड़े बड़े द्वार बने थे और अब उसी कुशस्थली पुरी को द्वारिकापुरी कहते हैं। उस द्वारका पुरी में वसुदेव प्रभृति प्रमुख भोज वृष्णि और अन्धक वंशके लोग रह रहे थे शत्रुओं को जीतने वाले रैवत राजा ने इस रहस्य को जानकर अपनी कन्या रेवती जी का विवाह बलदेवजी के साथ कर दिया और आप स्वयं मेरुपर्वत की चोटी पर जाकर तपस्या करने लगे। बलराम जी ने रेवती के साथ दाम्पत्य सुख प्राप्त किया यह जगत प्रसिद्ध बात है। सूत जी से इस प्रकार कथा सुनकर ऋषियों ने कहा–

ऋषि बोले–हे सूत जी ! अनेक युगों के बीत जाने पर भी रेवती जी पर वृद्धावस्था नहीं आई, यह कैसे सम्भव है। मेरु पर्वत पर तपस्या करने के लिये राजा शर्याति के जाने पर उनके किस प्रकार सन्तान पैदा हुई, जो आज भी पृथ्वी पर उनके नाम से प्रसिद्ध है। आप हमको क्रम पूर्वक इनका वर्णन सुनाइए। ब्रह्माजी की सभा में कितने देव गण निवास करते हैं ? वहां के गन्धर्व कैसे हैं जिनके संगीत को सुनकर राजा रैवत ने इतने लम्बे समय को दो घड़ी माना ?

सूतजी बोले–हे ऋषियो ! ब्रह्मलोक को जाने वाले प्राणी को न वृद्धावस्था आती है, न उसे भूख सताती है और न उसको प्यास लगती है, उसे न मौत का डर है न किसी प्रकार का भय ही सताता है। न उसे कोई प्रकार के रोग ही घेरते हैं। हे व्रतधारी ऋषिगण ? उस गान्धर्व विद्या के विषय में मैं आप लोगों को कुछ बात बता रहा हूँ।

सूतजी बोले–हे ऋषिगण ! उस गान्धर्व संगीत शास्त्र में सात स्वर में होते हैं, तीन ग्राम होते हैं, इक्कीस मूर्छनायें होती हैं, तथा उनचास ताल होते हैं–इसी को स्वर मण्डल कहते हैं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहलाते हैं। सौवीरी, हरिणाश्वा, कलोपवला, शुद्ध मध्यमा, शाङ्गी, पावनी और दृष्टाका इत्यादि ये मध्यग्राम के नाम से पुकारे जाते हैं। उत्तरमन्दा-जननी, उत्तरायता, शुद्धषडजा इत्यादि षड़जग्राम के नाम से कहे जाते हैं। इसको सातवीं मानना चाहिए। अग्निष्टोमक, वाजपेयिक, पौण्ड्रक अश्वमेधिक, राजसूय, चक्रसुवर्ण, गोसव, महावृष्टिक, ब्रह्मदान, प्राजापत्य, नागपक्षाश्रय, गोतर,हयक्रान्त, मृगक्रान्त, सुन्दर विष्णु क्रान्त, सूर्यकान्त, मत्तकोकिल, वादिन, सावित्रअर्धसावित्र, सर्वतोभद्र, सुवर्ण, सुतन्द्र, विष्णु, वैष्णवर, सागर, विजय, हस, तुम्बुरुप्रिय, अधांत्र इत्यादि ये सभी गान्धार ग्रामों की प्रशंसा गन्धर्वों ने करी है, ये विद्या नारद जी तथा अलम्बुष को अधिक प्रिय है भीमसेन ने भी इनकी प्रशंसा नागरों से की थी। विकल, उपनीत, विनत, अभिरम्य, शुक, पुण्याटक ये सभी गान्धार ग्राम में ही कहे जाते हैं। मध्यमग्रामों

की संख्या बीस है, षड्जग्रामों की संख्या चौदह मानी जाती है। इसके बाद गान्धार ग्राम की संख्या को पन्द्रह मानते हैं। प्रजापति ब्रह्माजी सौवीरी के साथ गान्धारी का गान करते हैं। उत्तरादि स्वरों के देवता ब्रह्माजी ही माने जाते हैं। हरिदेश में उत्पन्न होने के कारण मूर्च्छना हरिणाश्या के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्द्र इसके देवता माने जाते हैं। सम्पूर्ण स्वर मण्डल को मरुतों द्वारा प्रसारण पूर्वक ग्रहण करने के कारण कलोपनता के देवता मारुत माने जाते हैं। मरुदेश में उत्पन्न होने के कारण मूर्च्छना को शुद्ध मध्यमा कहते हैं। इस में शुद्ध स्वर मध्यम माना जाता है। इसके गन्धर्व देवता हैं। सिद्धों को मार्ग दिखलाते समय मृगों के साथ घूमने के कारण मूर्च्छना को मार्गी नाम से पुकारते हैं। इसके देवता मृगेन्द्र माने जाते हैं। यह मूर्च्छना अनेक स्वरों का आश्रयभूत होने के कारण बहुत से नगरों में गाए जाने वाले स्वरों में प्रयुक्त होती है। रजनी नाम की मूर्च्छना रजोगुणमयी होती है, उत्तर मन्द्राशताल के देवता षड्ज को मानते हैं। उसका उत्तरवर्ती ताल भी पहले का अनुयायी है। इससे उसका नाम भी उत्तरमन्द्र कहा जाता है। विस्तृत और उत्तरवर्ती होने के कारण सौगत की मूर्च्छना उत्तरायण है। इसके अधिदेवता पितृगण हैं जो श्राद्ध में पूजे जाते हैं।

षड्ज स्वर से महर्षियों ने अग्नि की उपासना की थी। षडजिक नाम से कहा जाता है। पंचम स्वर की मूर्च्छना से सत्पुरुषों का मन मूर्छित हो जाता है यह यक्षों की पत्नियों की मूर्च्छना कही है इससे इसका नाम याक्षिकी मूर्च्छना है दृष्टि मात्र से विष फैलाने वाले नाग जिस मूर्च्छना को सुनकर चल फिर नहीं सकते और ब्रह्मा द्वारा मृतक के समान हो जाते हैं। इसको अहिमूर्च्छना कहते हैं। इसके अधिदेवता वरुण हैं। जिस स्वर का अनुकरण कर जिसका गान करते हैं उस सबसे उत्तम मूर्च्छना के अधिदेवता गरुड़ हैं। अश्व के समान तीव्र गति से चलने या जिसे सुन कर घोड़े विहार

करते हैं उस मूर्च्छना का नाम अश्वक्रान्ता है। उसके अधिदेवता दोनों अश्विनीकुमार हैं। गान्धार राग के शब्द से गौ (पृथ्वी) को धारण करते हैं इसलिये इसको गान्धारी मूर्च्छना कहते हैं। इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। गान्धार के बाद जिस मूर्च्छना की उत्पत्ति हुई है उसे उत्तर गान्धारी कहते हैं इसके अधि देवता वसुगण हैं।

षड्ज नाम की मूर्च्छना सबसे पहले ब्रह्माजी के सामने आई इससे इसका महत्व अधिक है। इसके अधिदेवता अनल हैं। मन्दष्ठा नामक मूर्च्छना का विस्तार बहुत अधिक है। इसके प्रभावदिव्य हैं। इसके अधिदेवता पंचम हैं। इस प्रकार सप्त स्वरों, समस्त मूर्च्छना और उनके छै साधारण भेदों का वर्णन मैंने आपसे किया।

इति श्री वायु महापुराण का गांधर्व मूर्च्छना कथन नामक छियासीवां अध्याय समाप्त

सतासीवाँ अध्याय

(गीतों के अलंकारों का वर्णन)

अब मैं तीन सौ संगीत के अलंकारों का वर्णन आचार्यों के मतानुसार करता हूँ सो सुनिये। अपने अपने वर्णों एवं पद समूहों के संयोग से संगठित होने को ही अलंकार कहते हैं। पद एवं वाक्य के योगार्थ के द्वारा अलंकार की पूर्ति होती है। गीतों के तीन स्थान होते हैं उरुस्थल, कण्ठ, शिर। इन तीनों स्थानों में प्रारम्भ किया गया स्वर उत्तम होता है। प्रकृतिगत वर्णों की संख्या चार है और विचार भी चार प्रकार के होते हैं। विकल्प से ये आठ प्रकार के होते हैं। देवगण इनकी सोलह संख्या बताते हैं! वर्णों के तत्वज्ञ चार वर्ण निम्न बताते हैं—स्थायी, संचारी, आरोहण, अवरोहण।

स्थायीभाव–जिसमें एक ही प्रकार का भाव वर्ण में जिसका संचरण होता है वह स्थायी भाव कहलाता है।

संचारीभाव–विभिन्न प्रकार के भावों में जिसका संचरण होता है।

अवरोहण–जिसकी निम्नगति होती है वह अवरोहण होता है।

आरोहण–जिसकी गति उन्नतिशील होती है। यह सब वर्णवेत्ता लोग बताते हैं।

इन्हीं चारों प्रकार के वर्णों के अलंकार सुनिए। प्रधानतः अलङ्कारों के निम्न चार भेद हैं, स्थापनी, क्रमरेजित, प्रसाद और प्रस्तार। उष्ट्रकल नामक विकृत स्वर एक स्थान से उत्पन्न होकर दूसरे स्थान में समाप्त होते हैं उस आवर्त (घुमाव) की उत्पत्ति और उसका क्रम दोनों परिणाम के अनुरूप करना चाहिए। अन्य कुमार नामक स्वर को अति अल्प विस्तार करने वाला जानना चाहिए। दूसरा अपांग नामक और मात्राधिक कुलारेक नामक अलङ्कार होता है। श्येन नामक स्वर एक ही स्थान में उत्पन्न होता है और कलामात्र के अन्तर प्रतिष्ठित होता है। इसी स्वर में बुद्धि विलक्षण होती है। इसी श्येनस्वर को उत्तर अवरोह कहते हैं। कला कला के फलस्वरूप सविन्द नामक स्वर उत्पन्न होता है। विन्दु को एक कला की करनी चाहिये, यह एक ही वर्ण के अन्त में स्थित रहने वाली है। जहां अनवधानता नहीं होती है वहां स्वरों की उलट फेर होती है। षड्ज से एक स्वर का अन्तर देकर एकान्तरा वाद्य करने से उत्कृष्ट स्वर होता है। इसमें काक के समान स्वर का आक्षेप करने से पुष्कल स्वर होता है। कारण कार्य रूप से दोनों संचारों का संचारण करना चाहिये। इस तरह शीघ्रता की गति तक अवरोह स्वर संचार करने पर प्राक्षेपद्य अलङ्कार होता है। इसके बाद द्वादशकला हैं। इस प्रकार के स्वरों से मिलकर प्रेखोलित अलङ्कार होता है। फिर अधिक स्वरों के संक्रमण होने के कारण ही वह पुष्कल कहा जाता है। मात्रा के प्रक्षेप और पाद संक्रमण होने से द्विकलात्मक अलङ्कार होता है, वह ग्रासित कहलाता है। स्वरोच्चार और विस्वर के संयोग से अष्टस्वर का अन्तर होजाता है। तार और मन्द्र के क्रम से स्वरावरोह होते हैं वे अन्त में उसी स्वर के एक अन्तरा के बाद उपयुक्त माने जाते हैं।

मणिच्छेदन नामक गण की चार कलायें कही गईं हैं। वर्ण,

स्थान और प्रयोग के अनुसार कला मात्र प्रमाण के द्वारा अलंकारों को निश्चित करते हैं। इस प्रकार तीस अलंकारों का वर्णन किया गया। संस्थान, प्रमाण, विकार और लक्षण ये चार अलंकारों के प्रयोजन जानने चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य के ऐसे स्थान पर अलंकार धारण न करने पर जहाँ वे योग्य लगते हैं तो वे शरीर की शोभा की हानि ही करेंगे। उसी प्रकार ये संगीत अलंकार संगीत के योग्य स्थान पर न पड़कर तथा निम्नकोटि के होकर वर्णों की शोभा बढ़ाने में सामर्थवान नहीं होते हैं। इसलिये स्त्रियों के आभूषणों की तरह इन संगीत के अलंकारों को ठीक स्थान पर लगाना चाहिये। अलंकारों से अलंकृत होकर संगीत की भी शोभा बढ़ जाती है जैसे अलंकारों से स्त्रियां शोभा युक्त हो जाती हैं। अलंकारों को यथा स्थान न रखने पर निन्दा होती है। जिस प्रकार पैर में कुण्डल और कण्ठ में कौंधनी नहीं पहनी जा सकती और उनकी निन्दा होती है उसी प्रकार संगीत के अलंकार भी ठीक जगह में प्रयोग न किये जाने पर सर्वथा निन्दित किये जाते हैं। जो गायक ठीक स्थान पर अलंकारों का प्रयोग करते हैं वे संगीत का समुचित पालन करते हैं।

इसके बाद अब मैं पर्यव का लक्षण, वर्णिका के द्वारा उनका मासोद्भव तथा मुखोद्भव कहूँगा। षड्ज स्वर के तेईस प्रकार के अलंकारों का विपर्यय होने पर अस्सी प्रकार के हो जाते हैं। षड्ज भी तत्व आदि के कारण और हीन स्वर हो जाता है। षड्ज और मध्यम दोनों स्वरों का ग्राम का पर्यय, उत्तर मन्द तथा अपिक का मान छैः प्रकार का होता है। स्वर अलंकार और प्रत्यय इन सबके प्रत्यय होते हैं। वहिर्गीतों के कारण ये भी पंच दैवत माने गये हैं। गोलपों के आगे मध्यांश का स्थापन ही पर्यय है। इन दोनों का विभाग गीतों के सौन्दर्य में वृद्धि करता है। यह मैंने स्वसार और स्वरान्तर का गौण रूप में वर्णन किया। सप्त स्वर और पदक्रम के अनुसार पर्यय का प्रयोग होता है। चारों मद्रक गान्धारांश से गाये जाते हैं। पंचम धैवत में निषादज का प्रयोग होता है। मद्रकों

में षड्ज और ऋषभ का ही प्रयोग होता है। अन्यका नहीं होता। हयशुक्लाष्टक के ऊपर और अन्तिम दो भेद होते हैं। गन्धारांश में और प्राकृत में वेणु सम्बन्धी रागों का प्रयोग होता है। केशिक के सात रूप हैं तथा पद के तीन रूप होते हैं। सम्पूर्ण गान्धारांश से पर्यय विधि पूर्ण की जाती है। इस प्रकार मध्यमांश के मध्यम पद के भी लुमिक विधान का निर्देश किया गया है। रूप के साथ वाले गीतों केा सप्त स्वर से युक्त करना चाहिये। और केशिक को सप्तारूप से युक्त करना चाहिये। इस तरह अंगदर्शन, दोमान और समक को कहा गया है। द्वितीय भावाचरण मात्रा उपयुक्त नहीं होती। और स्वभावतः उत्तर (मान्द्र) में मात्रा लीन हो जाती है जहां इन्तार पिण्डक मात्रा से अधिक नहीं होता और जिस मात्रा में एक चरण और पौन चरण रहते हैं और उसमें संध्या के संघर्ष के कारण 'यान' अलंकार उत्पन्न होता है। दूसरा पाद भंग केा ग्रह नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। पहला, आठवां, तीसरा और दूसरा ऊपर और अन्तिम पाद साम्य के अधि भाग के साथ, पांचों में पाद भाग और सपाद पाद भाग प्रकृति में स्थित रहते हैं। उत्तर, मद्रवती, मद्रक में चौथी कला तथा मन्द्रक में दक्षिण की ऊपर कही कला रहती है। पहले ही अनुयेाग केा द्वितीय बुद्धि इष्ट रहती है इसके बाद दो पादों के और कलाओं के अकलन का विधान नहीं बताया गया है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! दोनों के उपयेाग की एकता और अनेकता की कलाओं के एकत्र संगठन केा पताका हरिण कहते हैं। वृत्ति में तीन वृत्तियों की आवृत्ति दक्षिण कही गई है। सौवीरी मूर्च्छना और वे आठसमवाय जेा दुहराये जाते हैं, इन सप्त स्वरों का अच्छी प्रकार अध्ययन करने वाले मनुष्य की कीर्ति चित्रशाखा सूत की कीर्ति के समान सदा फैलती है।

इति श्री वायु महापुराण का गीतालङ्कार नामक सतासीवां अध्याय समाप्त

अठासीवाँ अध्याय

[वैवस्थत मनु के वंश का वर्णन]

सूतजी बोले–हे ऋषियो! रैवत राजा का दूसरा नाम कुकुद्मी था, उनके मेरु

पर जाने के बाद राक्षसों और यक्षों ने सारी कुशस्थली को नष्ट कर दिया था। धार्मिक और महात्मा राजा रैवत के अन्य सौ भाइयों को उन राक्षसों ने मार कर इधर उधर भगा दिया और इस प्रकार राक्षसों से डर कर सभी क्षत्रिय वंश के लोग तितर बितर हो गये जिस स्थान पर राजा स्वयं रहते थे, वहां पर भी उनके वंश के कुछ मनुष्य चले गये। उस धार्मिक राजा के वंश के क्षत्रिय लोग धार्मिक विचार वाले तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले सभी दिशाओं में प्रसिद्ध थे। इन्हीं के वंश में राजा धृष्ट के धार्ष्टक क्षत्र, रणधृष्ट नाम के पुत्र पैदा हुए, ये तीनों सभी क्षत्रिय जाति में अधिक बलवान तथा प्रसिद्ध माने जाते थे। दूसरे उसी वंश में नभग राजा के नाभाग नाम के प्रसिद्ध बलवान पुत्र पैदा हुये। नाभाग राजा के अम्बरीष नाम के पुत्र पैदा हुये और अम्बरीष राजा के विरुप नाम के पुत्रपैदा हुये, विरुप के पृषदश्व नाम के पुत्र पैदा हुये, पृषदश्व के रथीतर नाम के पुत्र हुये। राजा रथीतर के वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जाति के मनुष्य पैदा हुए। प्राचीन काल में मनु राजा के छींकते समय इक्ष्वाकु नाम के पुत्र पैदा हुए, ये पुत्र बहुत दानशील और धार्मिक प्रकृति के थे, इनके एक सौ पुत्र पैदा हुये इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम विंकुक्षि था, इनके अलावा नेमि, और दण्ड नाम के पुत्र प्रसिद्ध थे। विकुक्षि के शकुनि प्रभृति पांच सौ पुत्र पैदा हुए, इन्हों ने उत्तराखण्ड के देशों में राज किया, अड़तालीस राजाओं ने दक्षिण में राज्य किया, इनमें बीस राजा मुख्य माने जाते थे, जो दक्षिण के सभी प्रदेशों की रक्षा करते थे एक बार अष्टका तिथि के दिन इक्ष्वाकु राजा ने विकुक्षि से कहा—

राजा बोले—हे बलशाली पुत्र! श्राद्ध के लिए मृगों को मार कर कहीं से मांस लाओ। आज अष्टका तिथि है, मेरा आज श्राद्ध करने का विचार है। अपने पिता की आज्ञा मान कर विकुक्षि वन में हिरणों का शिकार करने गए, और शिकार करते करते विकुक्षि बहुत थक गए थे, तो उन्हों ने अपनी थकावट दूर करने के लिए

वहीं पर एक खरगोश का मांस खा लिया। तब विकुक्षि अपने सैनिकों के साथ राजधानी को वापस आये, और राजा ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि हे गुरु देव ! आप "मांस को मन्त्रोच्चारण से पवित्र कर दीजिये. तब राजा के इस प्रकार कहने पर वशिष्ठ जी ने अच्छा कह कर जब विधि पूर्वक सिंचन करने के लिए आये, तो सभी मांस को अपवित्र देखकर राजा से कहा कि हे राजन् ! तुम्हारे इस दुष्ट स्वभाव वाले पुत्र ने वन में एक खरगोश का मांस खा लिया है अतः इस कारण यह समस्त मांस अपवित्र होगया है। अब यह श्राद्ध करने योग्य नहीं है। वशिष्ठ जी की ऐसी बातें सुनकर राजा इक्ष्वाकु, अपने पुत्र विकुक्षि पर बहुत क्रोधित हुए और विकुक्षि से कहा कि मैंने तुमसे श्राद्ध कर्म के लिए मांस लाने को जंगल भेजा था, और तुमने मेरी आज्ञा का पालन भी किया, लेकिन अच्छे बुरे का कुछ विचार न रखते हुए तुमने यह सारा मांस अपवित्र कर दिया, और अब यह मांस पितृ कर्म करने योग्य नहीं है। अतः इस गुरु अपराध के कारण मैं तुमको त्याग रहा हूँ, तुम यहां से चले जाओ, तुम्हारी जहां इच्छा हो, वहीं रहो और अपने इस नीच कर्म का फल भोगो। वशिष्ठ के कहने पर इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को त्याग दिया। उस राजा इक्ष्वाकु के मरने पर भी राज्य नहीं स्वीकार किया, किन्तु महर्षि वशिष्ठ के बहुत कहने सुनने पर उन्होंने अयोध्या का राज्य स्वीकार किया, और पूरा पृथ्वी पर सभी राज्यों पर राज्य किया। लेकिन राज्य कार्य करने पर भी उस विकुक्षि की महिमा अपने पूर्व पाप के कारण दिनों दिन नष्ट होती गई। अतः मनुष्यों को चाहिए कि बिना विधान के मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये। इस मांस खाने के विषय में विद्वान मनुष्यों का कहना है कि "इस लोक में मैं जिसके मांस को खाता हूं, परलोक में वह मेरे माँस को खायेगा"—इसी प्रकार मांस खाने का नियम है। खरगोश के मांस को खाने वाले राजा विकुक्षि के ककुत्स्थ नाम का अधिक बलवान पुत्र पैदा हुआ। प्राचीन काल

में जब देवराज इन्द्र ने बैल का रूप धारण किया तो यह राजा उनके डोल पर चढ़ गये। यह आड़ीवक नाम के युद्ध का वर्णन था, इसलिये इसका नाम ककुत्स्थ पड़ा था।

ककुत्स्थ ने अनेना नाम के पुत्र पैदा हुए, अनेना के पृथु नाम के पुत्र पैदा हुए, पृथु के वृषदश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, वृषदश्व के अन्ध्र नाम के परम बलशाली पुत्र पैदा हुये। अन्ध्र के यवनाश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, और यवनाश्व के श्रावस्त नाम के पुत्र पैदा हुए, राजा श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम के नगर को बसाया था। श्रावस्त के बृहदश्व नाम के प्रतापी राजा पैदा हुए, बृहदश्व के कुवलाश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, इन्हीं राजा कुवलाश्व को धुन्धु के मारने के कारण धुन्धुमार कहते हैं।

ऋषि बोले—हे श्रेष्ठ सूत जी! आप हमको धुन्धु के वध का वर्णन सुनाइये, किस कारण से राजा कुवलाश्व को धुन्धुमार का पद प्राप्त हुआ।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! राजा वृहदश्व के इक्कीस हजार पुत्र थे, वे सभी पुत्र सभी विद्याओं में चतुर, विद्वान, बलवान, यज्ञकर्ता, धार्मिक विचार वाले थे। राजा वृहदश्व ने अपने सबसे धार्मिक, शूरवीर और साहसी कुवलाश्व को उन्होंने अपने राज्य का स्वामी बनाया, और इस प्रकार अपने बड़े पुत्र को राज्य सौंप कर आप बन में चले गए। उत्तम ऋषि ने राजा वृहदश्व को वन में जाते समय रोका, लेकिन वह नहीं रुके।

उत्तङ्क ने कहा—हे राजा! आप हम लोगों की रक्षा कीजिये उद्विग्न चित्त होने के कारण हम तपस्या करने में असमर्थ हो गये हैं। हे राजन्! हमारे आश्रम के पास ही मरुभूमि में बालू का समुद्र है। उसी पृथ्वी पर धुन्धु नाम का विकराल शरीर वाला महा बलवान मनुष्य रहता है। देवता भी उस धुन्धु का वध नहीं कर सकते, वह बालू में रहता है। वह धुन्धु मनु का

पुत्र कहलाता है। मनु के पुत्र होने पर यह दुष्ट स्वभाव का दारुण प्रकृति का है। वह सभी लोकों का नाश करने की इच्छा से सौ वर्षों से कठोर तप कर रहा है। वह एक वर्ष बीतने पर एक श्वांस छोड़ता है। उसके एक श्वांस छोड़ते समय सारी पृथ्वी हिलने लगती है। सात दिनों तक पृथ्वी कांपती रहती है और अग्नि की चिनगारियां निकलने लगती हैं। हे राजन्! इन सब उत्पातों से हम अपने इस आश्रम में भी नहीं निवास करते हैं। हे राजन् आप इस उत्पात से हमारी रक्षा कीजिये। तुम्हारे इस कार्य में भगवान विष्णु अपने तेजोबल से तुम्हारी सहायता करेंगे। इस असुर के मरने पर सभी लोक सुखी रहेंगे, हे भूपति! तुम इस यज्ञन असुर को मार सकते हो हे। निष्पाप? पूर्वकाल में भगवान विष्णु ने यह वरदान दिया है कि महाबलवान धुन्धु अल्प बल से अधीन नहीं किया जा सकता है, इस असुर को बहुत ही अधिक बलशाली मनुष्य ही अपने वश में कर सकता है। हे भूपति! इस असुर को कोई सौ वर्षों में भी नहीं मार सकता है। देवता भी उसको नहीं मार सकते हैं उत्तंग ऋषि के इस प्रकार कहने पर राजा बृहदश्व ने पुत्र कुवलाश्व को धुन्धु के मारने के लिये भेज दिया, और उत्तंग ऋषि से बोले हे महर्षि! मैं राजा हूँ, सभी को पालन करना हमारा धर्म है। लेकिन हे महर्षि! हम अस्त्र शस्त्र नहीं चलायेंगे। हे द्विज-श्रेष्ठ! हमारा पुत्र निसन्देह ही धुन्धु को मार देगा। इस प्रकार बृहदश्व प्रतिज्ञा करके अपने पुत्र कुवलाश्व को महर्षि को सौंप कर आप वन में तपस्या करने चले गये। इधर पिता की आज्ञा पाकर धर्मात्मा राजा कुवलाश्व अपने इक्कीस हजार पुत्र और महर्षि उत्तंग को साथ लेकर धुन्धु को मारने के लिए चल पड़े। इसके बाद उत्तंग ऋषि ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की और फिर भगवान विष्णु अपने तेज के साथ उस धर्मात्मा कुवलाश्व के शरीर में प्रविष्ट हुए। जिस समय

राजा कुवलाश्व धुन्धु को मारने के लिये चले, तो उस समय चारों तरफ आकाश में घोर शब्द होने लगे, और चारों तरफ से यह ध्वनि होने लगी कि राजा कुवलाश्व अवश्य ही इस धुन्धु राक्षस का वध करेंगे। देवता चारों तरफ से उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार अपने पुत्रों के साथ राजा कुवलाश्व उस बालुकामय समुद्र को खनाने लगे, उस समय वह राजा बहुत अधिक बलवान हो गये थे, फिर भी उत्तङ्क ऋषि के वश में स्थित थे। उस समय जब सब मिलकर उस बालुका मय समुद्र को खन रहे थे, धुन्धु पश्चिम दिशा की तरफ दिखाई देने लगा, उस समय वह बहुत क्रोधित हो रहा था, उसके मुख से अग्नि की ज्वालाऐं निकल रही थीं, वह इस प्रकार उगल रहा था मानों सभी लोकों को निगल जायेगा। फिर उसने अपने योगबल से चारों तरफ खूब जल बरसाया, चारों तरफ जल ही जल दिखाई पड़ने लगा। हे सभी ऋषियो, श्रेष्ठ ऋषी! उस समय जल की तरंगें इस प्रकार उठने लगीं, मानो चन्द्रमा निकल आया हो। फिर उस राक्षस ने राजा के तीन पुत्रों को छोड़कर सभी पुत्रों को भस्म कर दिया। तब धुन्धु के नष्ट करने की इच्छा से राजा ने उस सम्पूर्ण जल को पीलिया और अपने योगबल से उस अग्नि को भी शान्त कर दिया, और इस प्रकार अपने अधिक उत्साह और साहस से राजा ने उस धुन्धु असुर को मार दिया, तब उस असुर को मार कर राजा उत्तङ्क ऋषि के पास आये तब महर्षि ने राजा के अदम्य साहस को देख कर उन पर प्रसन्न होकर उत्तम वरदान राजा को दिया। राजा को महर्षि ने कभी नष्ट न होने वाली अक्षय सम्पत्तिप्रदान की वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, धर्म में प्रेम भावना बढ़ और स्वर्गलोक में हमेशा वास करे वहां से कभी उसका पतन न हो, उसे इस प्रकार वरदान दिया। और राक्षसों को मारने के लिये उन सभी मरे हुये पुत्रों को अक्षय स्वर्ग प्रदान किया। इसके बाद राजा कुवलाश्व के बचे हुये तीन पुत्र रह गये थे उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम हटाश्व दूसरे का नाम भद्राश्व और तीसरे पुत्र का

नाम कपिलाश्व था। धुन्धुमार के बड़े पुत्र दृढ़ाश्व के पुत्र का नाम हर्यश्व था। हर्यश्व के निकुम्भ नाम का पुत्र पैदा हुआ। निकुम्भ नाम का पुत्र हमेशा क्षत्रिय धर्म में निरत रहता था। निकुम्भ के संहताश्व नाम का युद्ध में निपुण पुत्र पैदा हुआ। संहताश्व की स्त्री का नाम हेमवती था, उसको मतिदृषद्वती भी कहते थे, वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी उसके प्रसेनजित नाम का एक पुत्र पैदा हुआ। प्रसेनजित के युवनाश्व नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह धार्मिक विचार वाला परम कान्तिमान था जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध था उसके गौरी नाम की स्त्री थी, उसके पति ने एकबार उसे शाप दे दिया। जिसके फल से वह बाहुदा नाम की नदी के रूप में बदल गई उसके गौरिक नाम का पुत्र चक्रवर्ती सम्राट हुआ था। युवनाश्व के मान्धाता नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह पुत्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध था। उन मान्धाता के विषय में विद्वानों ने दो श्लोक बताये हैं उनका अर्थ इस प्रकार है "जिस स्थान पर सूर्य भगवान उदय होते हैं और जिस स्थान पर जाकर अस्त होते हैं वह सब मान्धाता का राज्य कहा जाता है। पुराण को जानने वाले विद्वान पुरुष राजा मान्धाता को भगवान विष्णु का स्वरूप बतलाते हैं। शशबिन्दु की कन्या चैत्ररथी का विवाह राजा मान्धाता के साथ हुआ था, वह पूरी पृथ्वी पर सबसे अधिक सुन्दर थी। उस परम पतिव्रता चैत्ररथी का नाम विन्दुमती भी था। उसके दस हजार भाई थे, वह अपने सभी भाइयों से बड़ी थी। प्रतिभाशाली राजा मान्धाता ने उस अपनी स्त्री के साथ सम्भोग करने से तीन पुत्र पैदा किये, इन पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं–पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा तीसरे पुत्र का नाम मुचुकुन्द था। राजा अम्बरीष के दूसरे युवनाश्व पुत्र पैदा हुये। युवनाश्व के हरित नाम के पुत्र पैदा हुये, हरित के शूरि नाम के पुत्र पैदा हुये। ये सभी अंगिरा ऋषि के पुत्र ब्राह्मण कहलाते थे। राजा पुरुकुत्स के त्रसदस्यु नाम के पुत्र पैदा हुये, ये नर्मदा में पैदा हुये थे। त्रसदस्यु के सम्भूत नाम के पुत्र पैदा हुये। सम्भूत के अनरराय नाम के परम प्रतापी पुत्र पैदा हुये।

इन अनरण्य ने प्राचीन काल में त्रिलोकी विजय प्राप्त के विषय में रावण का वध किया था। राजा अनरण्य के त्रसदबूव नाम के पुत्र पैदा हुये। इनके पुत्र का नाम हर्यश्व था। राजा हर्यश्व के हषद्वती में बसुमत नाम के पुत्र पैदा हुये। राजा वसुमत के त्रिधन्वा नाम के परम धार्मिक पुत्र पैदा हुये। राजा त्रिधन्वा के त्रय्यारुण नाम के प्रभावशाली राजा पैदा हुये। इनके पुत्र का नाम सत्यव्रत था, इन्होंने विदर्भ राजा की स्त्री का हरण किया था। इन परम बलवान राजा सत्यव्रत के विष्णु वृद्ध नाम के पुत्र पैदा हुये। इनके वंश में पैदा होने वाले मनुष्य विष्णुवृद्ध कहलाते हैं। अंगिरा के वे सभी पुत्रगण क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ण के हैं। परम बुद्धिमान सत्यव्रत ने अपनी भावी इच्छा के वश होकर बल पूर्वक दुराचरण किया था, उसके इस अधर्मी चरण से असन्तुष्ट होकर उनके पिता त्रय्यारुण ने उनको त्याग दिया था। और क्रोधित होकर उससे कहा कि "तुम हमारे घर से निकल जाओ।' तब उसने अपने पिता से कहा कि 'मैं कहाँ जाऊँ'। तब उसने कहा कि तू जाकर चाण्डालों के साथ निवास कर, हे कुल को कलंकित करने वाले! तुम्हारे जैसे दुष्ट पुत्र से मैं पुत्रवान होने की इच्छा नहीं रखता।' हे प्रतापशाली! पिता के इस प्रकार निरादर पूर्ण शब्दों को सुनकर राजा सत्यव्रत अपने नगर से बाहर निकल गये। उस समय सत्यव्रत को महर्षि वशिष्ठ ने भी नहीं रोका। तब पिता के त्यागे जाने पर बुद्धिमान वीर सत्यव्रत चाण्डालों की बस्ती में जाकर रहने लगे, और उनके पिता भी वन को चले गये। इस पाप से उस देश में बारह वर्ष वर्षा नहीं हुई, उसी देश में विश्वामित्र जी भी अपने घर बच्चों को त्याग कर सागर के किनारे जाकर कठिन तप करने लगे। विश्वामित्र जी की स्त्री ने अपने बीच के लड़के को गले में बांध कर और पुत्रों के पालने के लिये उसको सौ गायों के बदले में बेच दिया। ब्रतपरायण, धार्मिक राजा सत्यव्रत ने विश्वामित्र के बीच के लड़के को इस प्रकार गले में बंधा और दुखी देखकर उसको दुख से छुड़ा कर उसका पालन पोषण किया। उस पुत्र के गले में बँधने के कारण ही विश्वामित्र के बीच के पुत्र का नाम गालव पड़ा

था। इस प्रकार विश्वामित्र के पुत्र को राजा सत्यव्रत ने बचाया था। तब राजा सत्यव्रत ने अपनी भक्ति सत्य प्रतिज्ञा तथा विनय धर्म-परायणता से विश्वामित्र के पुत्रों और स्त्री का पालन पोषण भी किया। विश्वामित्र के आश्रम के पास ही राजा सत्यव्रत मृगों, सुअरों तथा अन्य वन के जीव जन्तुओं को मार कर उनके मांस को पका कर खाते थे, तथा मौन व्रत धारण करके बारह वर्ष तक पिता की आज्ञा से चाण्डालों की बस्ती में जाकर रहे। इधर वशिष्ठ जी पिता पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में अयोध्या, राज्य तथा अन्तपुर की रक्षा करते रहे। सत्यव्रत अपने बाल स्वभाव के कारण तथा भावीवश वशिष्ठ जी पर अधिक क्रोधित थे, क्योंकि अपने पिता द्वारा निकाले जाने पर जब वे रोते हुये देश से बाहर आये तो वशिष्ठ जी ने उनको नहीं रोका। विवाह संस्कार में सातवें चरण में मन्त्रों का उच्चारण समाप्त होता है सप्तसदी के होने के बाद ही विवाह कार्य सम्पन्न होता है, किन्तु उसी सप्तसदी के समाप्त होने के समय पर ही उन्होंने विदर्भ राज की स्त्री को बल पूर्वक हर लिया था। वशिष्ठ ऋषि धर्म की मर्यादा को जानने वाले थे, अतः उनको यह कार्य उचित न लगा, और मन्त्रों की मर्यादा नष्ट होने की वजह से उन्होंने सत्यव्रत के ऊपर क्रोध प्रकट किया। वशिष्ठ जी ने धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के कारण ही कुमार सत्यव्रत पर क्रोध किया था, लेकिन कुमार-सत्यव्रत भी इनके निकाले जाते समय उनके मौन का कारण न समझ सके। वशिष्ट जी ने सोचा कि, पिता की मृत्यु के बाद इन्द्र ने बारह वर्ष तक अधर्म बढ़ने के कारण वर्षा नहीं की। वन में सत्यव्रत भी पिता की आज्ञा मानकर दीक्षा ग्रहण करके चाण्डालों की बस्ती में बारह वर्ष तक निवास कर रहा है। संसार में मनुष्यों को जीविका चलाने का साधन असाध्य हो गया। महर्षि वशिष्ठ ने यह सोच कर सत्यव्रत को वन में जाते समय नहीं रोका कि सत्यव्रत कठिन तप करने के बाद उसके आने पर उसके वंश का निस्तार तो हो ही जायगा, और उससे कहा कि मैं तुमको राज्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूँ।' वन में आकर एक समय बलशाली सत्यव्रत को कहीं से मांस न मिला, तो उसने खाने की

इच्छा से महर्षि वशिष्ट की कामधेनु गाय को देखा। सत्यव्रत क्रोध, मोह, लोभ के तथा थके मांदे होने के कारण सोचने लगे कि 'मैं चाण्डालों के साथ तो रह ही रहा हूँ, क्यों न इन्हीं जैसे आचरण करूँ, और इसी गाय को मार कर अपनी भूख की तड़प को शान्त करूँ।' ऐसा सोचकर उन्होंने महर्षि वशिष्ठ जी की कामधेनु गाय के मांस को स्वयं खाया, और महर्षि वसिष्ठ जी के पुत्रों को भी खिलाया। महर्षि वशिष्ठ जी ने जब यह सुना तो उनको बहुत दुख हुआ और उन्होंने सत्यव्रत को छोड़ दिया और बोले कि हे क्रूर उससे कर्म करने वाले! अब हम तुमको गिरा रहे हैं। हे अधम पुरुष! यदि तुम्हारे ये तीन शंकु न होते तो तुम्हारे ऊपर लोहे का शंकु गिराता। तुमने ये तीन धार्मिक अपराध किए हैं वह इस प्रकार हैं पहला कि तुमने पिता असन्तुष्ट किया, दूसरा गुरु की कामधेनु गाय को मार दिया, तीसरा बिना संस्कार के मांस भक्षण किया। अतः तुमने ये बहुत ही भारी अपराध किये हैं। महा तपस्वी वशिष्ठ जी ने उनके तीन शंकु के समान अपराधों का विचार करके उनका नाम त्रिशंकु रख दिया जब विश्वामित्र जी इधर तपस्या करके उठे, तो उन्होंने देखा कि उनके पुत्रादिकों और स्त्री का पालन पोषण सत्यव्रत कर रहे हैं तो उन्होंने त्रिशंकु पर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया, सत्यव्रत ने विश्वामित्र से अपने शाप का पूर्ण वर्णन कह दिया विश्वामित्र ने त्रिशंकु को बारह वर्ष बिना वर्षा के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्य पर बिठाया, और उससे सभी यज्ञादि शुभ कार्य करवाने लगे। ऐसा करते देख कर सभी देवगण तथा महर्षि वशिष्ठ जी देखते ही देखते रह गये। यज्ञावसान करते समय त्रिशंकु के स्नान करने से पापनाशिनी कर्मनाशा नाम की नदी प्रकट हुई, वह नदी विन्ध्याचल पर्वत के पास जंगलों और पहाड़ियों में होकर बहती है। वह कर्मनाशा नदी पुण्यदायी पवित्र और मंगल कारी है। इस प्रकार विश्वामित्र जी ने सत्यव्रत को स्वर्ग में स्थित किया, इन सब कार्यों को वशिष्ठ जी देखते ही रह गए। विद्वानों के इस विषय में दो श्लोक

वर्णित हैं। वह इस प्रकार हैं—"महामुनि विश्वामित्र जी की कृपा से त्रिशंकु ने स्वर्ग को प्राप्त किया, उस विश्वामित्र की कृपा से वही त्रिशंकु महा तेजस्वी होकर देवों के साथ शोभायमान होते हैं। त्रिशंकु रूप ग्रह के आकर्षण से विभूषित होकर, तीन प्रकार के भावों से अलंकृत हेमन्त में चन्द्रमा के समान सुन्दर एक परम सुन्दरी रमणी उसके पास धीरे धीरे जाती है।' सत्यव्रतराजा की स्त्री का नाम सत्यव्रता था, वह कैकय वंश में पदा हुई थीं। उस सत्यव्रता स्त्री ने राजा हरिश्चन्द्र नाम के धार्मिक पुत्र को पैदा किया, राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के पुत्र रूप में प्रसिद्ध हुये थे। उसने अपना राज्य करते समय कितने ही राजसूय यज्ञ सम्पन्न किये थे। वह राजा हरिश्चन्द्र सम्पूर्ण पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य करते थे। हरिश्चन्द्र के रोहित नाम के बहुत बलवान पुत्र पैदा हुये, रोहित के हरित नाम के पुत्र पैदा हुये, हरित के चंचु नाम का पुत्र पैदा हुआ। चं चुके विजय और सुदेव नाम के दो पुत्र हुये। विजय सभी क्षत्रियों को जीतने वाला था इसी कारण उसका नाम भी विजय था। बिजय का पुत्र रुरुक हुआ। जो अपने समय में बहुत ही धर्मात्मा था। रुरुक का पुत्र हृतक हुआ। हृतक के बाहु नामक पुत्र हुआ। हैहय और तालजंघ के वंशों में उत्पन्न होने वालों ने इस बाहु को परास्त कर दिया क्योंकि यह व्यसनी था। उनके साथ शक यवन काम्बोज पारद पल्हवों के वंशज भी थे। सतयुग के समय में भी राजा बाहु धार्मिक राजा नहीं था। उस राजा बाहु का पुत्र विष के साथ उत्पन्न हुआ उसका नाम सगर पड़ा। भृगु के आश्रम में उसकी रक्षा तुर्व ने की थी राजा सगर ने भार्गव ऋषि से आग्नेय अस्त्र प्राप्त किया और हैहय और तालजंघ के वंशजों का संहार किया। शक, पल्हवों पारदों और अन्य क्षत्रियों को भी हराया। और धर्म से वंचित कर दिया।

ऋषि बोले—हे सूत जी! राजा सगर विष से किस प्रकार उत्पन्न हुये। और किस लिये उस अच्युत राजा ने शक आदि को परास्त किया।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! प्राचीनकाल में राजा बाहु के व्यसनी होने पर उसका सारा राज्य हैहय शकों के साथ यवनों, पारद, कम्बोज और पल्हवों ने आक्रमण करके छीन लिया। इन सभी बलवान राजाओं के द्वारा राज छीन लेने पर बाहु अपनी पत्नि के साथ जंगल को चला गया। कुछ समय बाद एक दिन राजा जल लेने के लिए गया और अत्यन्त बुढ़ापे के कारण उसकी रास्ते में ही मृत्यु हो गई। उनकी पत्नि जिसका नाम यादवी था उसके साथ मरने को तैयार हुई, वह उस समय गर्भवती थी। उसकी सपत्नी ने उसके गर्भ को मारने की नीयत से उसे विष दे दिया। पति की चिता बनाकर यादवी को उस पर बैठा दिया। और अग्नि जलादी उसी बीच भार्गव और्व मुनि वहां आ गये। और उन्होंने उसे करुणावश बचा लिया। उन्हीं और्व मुनि के आश्रम पर यादवी ने सपत्नी द्वारा दिए गए विष के साथमहाबाहु सगर को उत्पन्न किया। मुनिनेसगर का जात कर्म आदि संस्कार किए। वेदशास्त्रों के साथ सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन कराया और शस्त्र अस्त्र भी सिखाये। उसी समय उन जमदग्न के पुत्र और्व मुनि से उस महान आग्नेयास्त्र को पालिया जिसके तेज को महापराक्रमी राक्षस भी सहन नहीं कर सकते थे। उसी अस्त्रदल तथा शस्त्र बल से तथा अपने पराक्रम से राजा सगर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयों का वध इस प्रकार करा दिया जैसे प्रलय में रुद्र जीवों का संहार कर देते हैं। हैहयों को मारने के बाद शक, पवन पारद कम्बोज और पल्हवों को भी मारने का निश्चय किया। सगर के पराक्रम से भयभीत होकर वे सब वशिष्ठ महर्षि की शरण में पहुँचे। वशिष्ठ जी ने उन्हें अभय दान दिया। गुरु वशिष्ठ के वचन तथा अपनी प्रतिज्ञा दोनों की रक्षा करते हुये उन सभी की वेषभूषा बदल दी तथा धर्म नष्ट कर दिये। शकों का आधा सिर काट दिया और उन्हें मुण्डित कर दिया। यवनों के पूरे शिर काट कर मुण्डित बनाकर छोड़ दिया कम्बोजों को भी पूरा शिर मुण्डित करके छोड़ा। पारदों के केश छोड़कर दाढ़ी मूछें मुड़ाकर छोड़ दिया। पल्हवों को

केवल दाढ़ी रखवा कर ही छोड़ दिया। उस महा बलवान राजा ने इन सबको वेदाध्ययन, यज्ञ हवन आदि से भी सर्वथा वंचित रखा ये शक यवन, कम्बोज, पह्लव, पारद, कलिस्पर्श नाहिषिक दार्व, चोल एवं खस जाति के सभी लोग पहले क्षत्रिय थे। इनको महाबलवान राजा सगर ने धर्म से नष्ट करके वशिष्ठ जी के कहने के कारण छोड़ दिया था। फिर उस धर्मविजयी राजासगरनेअश्वमेध यज्ञ कियाऔर यज्ञ का घोड़ा छोड़ा। समस्तभूमण्डल पर घुमाते समय वह अश्व का घोड़ा दक्षिण समुद्र प्रान्त में चुरालिया गया। और पृथ्वी के भीतर छिपा लिया गया। इसके बाद सगर ने उस समुद्र के प्रान्त को अपने पुत्रों के द्वारा खुदवा डाला। उसके पुत्र खोदते खोदते उस समुद्र के छोर तक पहुँच गये जहां भगवान नारायण, कृष्ण हंस, प्रजापति, हरि आदि पुरुष आदि अनेक नामों से कहे जाने वाले प्रभु कपिल वेष में रहते हैं। राजा सगर के पुत्रों ने उनको चोर समझा और उनके सामने पहुंचे परन्तु उनका तेज सहन न होने से वे सब वहीं भस्म हो गये। केवल चार पुत्र शेष रहे जिनके नाम वर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और पंचवन थे। राजा सगर के वंश को बढ़ाने वाले ये चार ही पुत्र थे। भगवान नारायण ने राजा को सुन्दर वरदान दिये। जिससे उनके वंश का क्षय न हो, सौ अश्वमेध यज्ञों का सुअवसर, समुद्र का पुत्रत्व तथा अनन्त समय तक स्वर्ग में निवास आदि का वरदान मिला। सभी नदियों के स्वामी समुद्र उस समय उनके पास आकर कहने लगे कि यह अश्व लीजिये और नमस्कार किया। बस इसीसे राजा सगर के पुत्र होने का समुद्र को सुअवसर मिला। इसके पश्चात उस अश्व को प्राप्त कर राजा सगर ने पुनः सौ अश्व मेध यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कर दिये। उसके प्रथम यज्ञ में जो साठ हजार पुत्र थे वे सभी भस्म होकर नारायण के तेज में ही लीन हो गये।

ऋषि बोले—हे सूत जी! राजा सगर के ये साठ हजार पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुये थे सो कथा हमें बतलाने की कृपा कीजिये।

सूत जी बोले—राजा सगर के दो पत्नि थीं बड़ी पत्नी विदर्भ राजा की पुत्री केशनी थी और छोटी पत्नि राजा अरिष्टनेमी की पुत्री थी

जो परम धार्मिक तथा रूपमें समस्त भूमण्डल पर अकेली थीं। उसका नाम सुमति था। महर्षि और्व ने राजा को वरदान दिया था कि उनकी एक पत्नि से केवल एक पुत्र होगा तथा एक के द्वारा साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे। केशिनी ने एक वंश कर्त्ता पुत्र मांगा तथा सुमति ने साठ हजार पुत्रों का वरदान मांगा। तदनुसार समय आने पर बड़ी रानी केशिनी ने समय आने पर ज्येष्ठ पुत्र असमंज 'काकुत्स्थ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यशस्वनी रानी सुमति ने अपने गर्भ से एक 'तुम्ब' पैदा किया। जिसमें साठ हजार पुत्र निकले। उत्पन्न होने के बाद वह गर्भ सभी घी के पात्रों में रख दिए गये। राजा ने उनको साठ हजार धायों को पालन पोषण के लिए सौंपा। नौ माह बाद वे साठ हजार पुत्र बाहर (घी के पात्रों से) निकले। जिन्हें देखकर सगर ने परम सुख माना। फिर वे सभी राजकुमार युवा हुए। इस प्रकार वे साठ हजार पुत्र हुये।

राजा सगर के बड़े पुत्र असमंज बड़े बलवान थे उनका दूसरा नाम वर्हिकेतु भी था। पहले वे नगर के अहित कर कार्यों में लगे रहे। इससे उनको पिता ने देश निकाला दे दिया था। असमंजस के अंशमान नामक पुत्र हुए। अंशमान के दिलीप हुये। जो बहुत विख्यात हुये। दिलीप के भागीरथ नामक वीर पुत्र हुए। इन्हीं भगीरथ ने अपनी क्रियाओं एवं पूजा के द्वारानदियों मेंश्रेष्ठ गंगाजी को पुत्री रूप में प्राप्त किया। और उनकी पावन धारा से समुद्र तक पृथ्वी को शोभायुक्त किया। पुराण वेता इसका सदा गान करते हैं कि राजा भागीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर उतारा तथा ऐतिहासिक पुरुष भी गंगा को भागीरथी कहते हैं। राजा भागीरथ के पुत्र श्रुत हुए। उनका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ। जो बड़ा ही धर्मात्मा था नाभाग का पुत्र अम्बरीष था, उसका पुत्र सिन्धु द्वीप हुआ। सिन्धु द्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ। वह महाबलशाली राजा था। उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ ऋतुपर्ण राजा नल का सुहृद और वीर था। दिव्य अक्ष विद्या में वह बड़ा चढ़ा था पुराणों, में दो नल हुए हैं,

ऐसा प्रसिद्ध है। एक राजा बीरसेन के पुत्र नल थे। दूसरे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुये थे। राजा ऋतुपर्ण के पुत्र सर्वकाम हुये। सर्वकाम के पुत्र सुदास थे। सुदास का दूसरा नाम हंसमुख भी था। सुदास के पुत्र सौदास कहे गये। जो कल्माषपाद तथा मित्रसह नाम से प्रसिद्ध थे। महातेजस्वी महर्षि वशिष्ठ जी ने इक्ष्वाकु वंश को वृद्धि के लिये कल्पाषपाद की भार्या ने अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अश्मक का पुत्र उरकाम हुआ। उरकाम का पुत्र मूलक था। मूलक के विषय में यह प्रसिद्ध है कि 'मूलक' राम यानी परशुराम के डर से सदा स्त्रियों में निवास करता था। समर्थ होने पर भी अपने कवच को स्त्रियों को पहनाये रखता था तथा स्वयं वस्त्र विहीन रहता था। और स्त्रियों के वेष में रहता था। राजा मूलक का पुत्र धर्मात्मा शतरथ हुआ। उसका भी पुत्र एडविड परम कन्ति वाला हुआ। उसके पुत्र प्रतापशाली कृतशर्मा हुये उसके तेजस्वी विश्वमहत हुये। उनके पुत्र राजा दिलीप हुये। उनका दूसरा नाम खट्वांगद भी था। वे राजा दिलीप स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर केवल दो घड़ी तक जिन्दा रहे। वे अपने सत्य बुद्धि एवं बल में तीनों लोकों को परास्त कर चुके थे। राजा खट्वांगद के पुत्र रघु दीर्घबाहु वाले हैं। रघु राजा के अज नाम के पुत्र पैदा हुये। और अज राजा के अयोध्या के परम प्रतापी राजा दशरथ इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुये। राजा दशरथ के पुत्र भगवान रामचन्द्र जी हुये, भगवान राम परम धार्मिक थे, सभी लोकों में वह प्रसिद्ध थे। राजा दशरथ जी के तीन पुत्र और थे, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न थे। शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार कर और मधुवन में घुसकर वहीं पर मथुरा नाम की पुरी को बसाया। शत्रुघ्न का विवाह राजा जनक की पुत्री के साथ हुआ था, उनके सुबाहु और शूरसेन नाम के दो पुत्र पैदा हुये। उन पुत्रों ने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरा पुरी में राज्य किया। लक्ष्मण के चन्द्रकेतु और अङ्गद नाम के दो पुत्र पैदा हुये, उन दोनों ने हिमवान पर्वत के सीमावती प्रान्त तक राज्य किया उनके बड़े पुत्र अंगद ने कारपथ

देश में अंगदीय नाम की नगर बसाया और उनके छोटे पुत्र चन्द्रकेतु ने चन्द्रवकां नाम की पुरी को बसाया था। भरत जी के तक्ष और पुष्कर नाम के दो पुत्र पैदा हुये। तक्ष ने अपनी तक्षशिला नाम की पुरी को बसाया, और पुष्कर ने पुष्करावती नाम की पुरी को बसाया, इन दोनों की राजधानी गान्धार देश में थी, जो पुराणों के जानने वाले विद्वान पण्डित हैं वे रामचन्द्र जी के विषय में उनके महात्म्य को प्रकट करने वाली पूर्ण यशोगाथाओं का गान करते हैं। वे इस प्रकार कहते हैं कि भगवान श्यामल वर्ण के हैं। लाल नेत्र वाले हैं, तेज से चमकते हुये मुख वाले और मितभाषी युवा थे, वे बहुत सुन्दर छटा वाले थे, उनकी दोनों भुजा घुटनों को छूती थीं, उनका सिंह के समान विशाल कन्धा था, उनके भुजदण्ड भी विशाल थे राम ने दस हजार वर्षों तक राज्य किया, उनके समय राज्य में चारों तरफ ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद की सुन्दर ध्वनि सुनाई पड़ती थी। उनके धनुष की प्रत्यंचा की आवाज बहुत कठोर थी। उनके राज्य में किसी भी मनुष्य को किसी प्रकार का दुख नहीं था, मनुष्यों में खूब खाओ पीओ, और खूब दान धर्म करो इस प्रकार धूम मची रहती थी। उन भगवान राम ने पृथ्वी पर जन्म लेकर मनुष्यों के साथ निवास करके देवताओं का एक बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया। भगवान राम ने पुलस्त्य ऋषि के वंश में पैदा होने पापात्मा रावण का वध किया था। दशरथ के पुत्र भगवान राम परम बलशाली, सर्व गुण सम्पन्न अपने अद्वितीय नेत्र से प्रकाशित थे। उन्होंने सूर्य और अग्नि को भी अपने तेज से क्षीण कर दिया था। परम प्रभाव शाली राजा इक्ष्वाकु वंश में पैदा होने वाले भगवान राम ने रावण को उसके परिवार सहित नष्ट कर दिया, और फिर आप स्वर्ग को चले गये। राम के लव और कुश नाम के दो पुत्र पैदा हुये, उन दोनों का राज्य इस प्रकार था। कुश ने कौशला नाम का एक प्रसिद्ध नगर बसाया, उनकी राजधानी कुशस्थली नाम से प्रसिद्ध थी, कुश ने

विन्ध्याचल पर्वत के सुन्दर शिखर पर यह नगर बसाया था। वीर लव ने श्रावस्ती नाम की पुरी को बसाया था। कुश के वंश का वर्णन अब मैं आपको सुनाऊंगा।

कुश के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, वे सभी अतिथियों का खूब आदर सत्कार करते थे, वे अतिथि नाम से प्रसिद्ध हुये। अतिथि के निषध नाम के पुत्र पैदा हुये। निषध राजा के नल नाम के पुत्र पैदा हुये, पुण्डरीक के क्षेमधन्वा नाम के पुत्र पैदा हुये। क्षेमधन्वा के परम बलवान देवानीक नाम के राजा पैदा हुये। देवानीक के अहीनगु नाम के पुत्र पैदा हुये, अहीनगु के परिपात्र नाम के पुत्र पैदा हुये, परिपात्र के दल नाम के पुत्र पैदा हुये, दल के वल नाम के पुत्र पैदा हुये। वल राजा के ओङ्क नाम के बहुत धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, ओङ्क के वज्रनाभ नाम के पुत्र पैदा हुये, बज्रनाभ के शङ्खन नाम के पुत्र पैदा हुये, शङ्खन के ध्युषिताश्व नाम के पुत्र पैदा हुये। राजा ध्युषिताश्व के विश्वसह नाम के पैदा हुये। राजा विश्वसह के हिरण्यनाभ कौशल नाम के पुत्र हुये, उनके वशिष्ठ नाम के पुत्र पैदा हुये, वे वशिष्ठ जी जैमिने के पौत्र शिष्य रूप में पुकारे जाते हैं। इन्होंने पांच सौ संहिताओं का विधिवत् अध्ययन किया है। विद्वान याज्ञवल्क्य जी ने इन्हीं से सांङ्गोपांग विद्या ग्रहण की। उनके पुष्प नाम के पैदा हुये, पुष्प के ध्रुवसन्धि नाम के पैदा हुये ध्रुवसन्धि के सुदर्शन नाम के पैदा हुये सुदर्शन के अग्निवर्ण पैदा हुये। अग्निवर्ण के शीघ्रक नाम के पैदा हुये, शीघ्रक के मनु पैदा हुये। राजा मनु योग मार्ग के सहारे कलाप नाम के ग्राम में निवास करते थे। ऐश्वर्यशाली ये मनु इक्कीसवें युग में क्षत्रिय धर्म के पुनः प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध हुये। मनु के प्रसुश्रुत पैदा हुये। प्रसुश्रत के सुसन्धि नाम के पुत्र पैदा हुये। सुसन्धि के मर्ष नाम के पुत्र पैदा हुये, इनको सहस्वान नाम से भी पुकारते थे सहस्वान के विश्रुतवान नाम के पुत्र पैदा हुये,

विश्रुतवान के वृहद्बल नाम के पुत्र हुये इक्ष्वाकु वंश में पैदा होने वाले प्रायः यही सब राजा हैं। इस वंश के जो मुख्य मुख्य राजा थे, उनका ही वर्णन किया है। जो मनुष्य अदिति के पुत्र विवस्वान की इस सृष्टि वर्णन का जो भलीप्रकार पाठ करता अथवा सुनता है, वह सन्तानवान होकर विवस्वान के पुत्र मनु के साथ निवास करता है। जो मनुष्य की भुजाओं को पुष्टि देने वाला है, तथा श्राद्धों में पूजने योग्य पितरों और देवगणों का वर्णन है, इसका पाठ करता है अथवा सुनता है वह सभी पापों से छूट कर सुख समृद्धि और दीर्घायु को प्राप्त करता है। बिना सन्तान वाले को पुत्र प्राप्त होता है तथा स्वर्ग मिलता है।

[श्री वायु महापुराण का वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन नाम का अठासीवां अध्याय समाप्त]

नवासीवाँ अध्याय

[वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषिगण ! इसके बाद अब मैं आपको विकुक्षि के भाई राजा निमि के वंश का वर्णन करूंगा। राजा निमि ने गौतम ऋषि के आश्रम के चारों तरफ जयन्त नाम का एक सुन्दर नगर बसाया, वह नगर देवपुर के समान सुन्दर और प्रसिद्ध था, उन्हीं निमि राजा के वंश में सत्तम जनक ने नेमि नाम के धर्मात्मा पुत्र को पैदा किया। वे सभी के आदरणीय माने जाते हैं। तेजस्वी राजा इक्ष्वाकु ने जिस पुत्र को पैदा किया, वह महर्षि वशिष्ठ जी के शाप से विदेह शरीर रहित हो गया। विदेह के अरणी के तीन पर्वों के मंथन करने से मिथि नाम के पुत्र पैदा हुये, इस प्रकार जनन होने के कारण उनका नाम जनक भी पड़ा। वे मिथि नाम के राजा बहुत धर्मात्मा और बलवान थे, उन्होंने अपने मिथि नाम पर ही मिथिलापुरी नाम की पुरी को बसाया था। राजा जनक के उदावसु नाम के पुत्र पैदा हुये, उदावसु से नीन्द वर्धन नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, नीन्द वर्धन

के सुकेत नाम के धार्मिक पुत्र पैदा हुए, सुकेत के देवरात नाम के महावलवान पुत्र पैदा हुए। देवरात के बृहदुत्थ नाम के पुत्र पैदा हुए राजा वृहदुत्थ के महावीर्य नाम के परम प्रतापी राजा पैदा हुए, महावीर्य के धृतिमान नाम के पुत्र पैदा हुए, धृतिमान के सुधृति नाम के पुत्र पैदा हुए। सुधृति के धृष्टकेतु नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुए। धृष्टकेतु के हर्यश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, हर्यश्व के मरु और मरु के प्रतित्वक नाम के पुत्र पैदा हुए। प्रतित्वक के कीर्तिरथ नाम के पुत्र पैदा हुये। कीर्तिरथ राजा के देवमीढ नाम के पुत्र पैदा हुए, देवमीढ के विबुध नाम के पुत्र पैदा हुये और विबुध के धृति नाम के पुत्र पैदा हुये। राजा धृति के कीर्तिराज नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये। कीर्तिराज के महारोमा नाम के पुत्र पैदा हुये, महारोमा के स्वर्णरोमा नाम के पुत्र पैदा हुये, स्वर्णरोमा के ह्रस्व रोमा नाम के पुत्र पैदा हुये, ह्रस्वरोमा के सीरध्वज नाम के पुत्र पैदा हुये, सीरध्वज राजा के पृथ्वी खोदते समय सीतादेवी प्रकट हुईं, श्रीसीता जी भगवान राम की परम साध्वी पतिव्रता प्राणप्यारी पत्नि थीं

शांशपायन बोले—हे सूत जी! राजा सीरध्वज के पृथ्वी खोदते समय सीताजी कैसे प्रकट हुईं, और राजा सीरध्वज अपने किस मतलब से उस स्थान की पृथ्वी को जोत रहे थे।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अश्वमेध यज्ञ के समय राजा सीरध्वज ने विधिपूर्वक जिस अग्नि क्षेत्र का कर्षण किया था, उसी से सीता जी का जन्म हुआ था। राजा सीरध्वज के भानुमान नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह पुत्र मैथिल नाम से भी प्रसिद्ध है उसके भाई का नाम कुशध्वज था, वह काशी का राजा हुआ। राजा भानुमान के प्रद्युम्न नाम का प्रतापी पुत्र पैदा हुआ। प्रद्युम्न के मुनि नाम का पुत्र पैदा हुआ। मुनि के उर्जवह नाम के पुत्र पैदा हुये। उर्जवह के सुतद्वाज नाम के पुत्र हुए, सुतद्वाज के शकुनि नाम के पुत्र पैदा हुए, शकुनि के स्वागत नाम का पुत्र पैदा हुआ, स्वागत के सुवर्चा नाम का पुत्र पैदा हुआ। सुवर्चा के श्रुत नाम के तथा श्रुत सुश्रुत नाम

के पुत्र पैदा हुए। सुश्रुत के जय नाम के पुत्र हुये, जय के विजय नाम के पुत्र पैदा हुये। विजय के ऋत नाम का पुत्र पैदा हुआ, ऋत के सुनय नामक पुत्र पैदा हुआ, सुनय के वीतहव्य नाम के पुत्र पैदा हुए, वीतहव्य के धृति नाम के पुत्र पैदा हुये, धृति के बाहुलाश्व नाम के पुत्र पैदा हुये, बहुलाश्व के कृति नाम के पुत्र पैदा हुए। इन्हीं राजा कृति तक महान प्रतापी राजा जनक का वंशज माना जाता है। मैंने आपको मैथिल राजाओं के वंश का वर्णन सुनाया है अब चन्द्रमा के वंश का वर्णन करूँगा।

(इति श्री वायु महापुराण का वैषम्वत मनु के वंश का वर्णन नाम का नवासीवां अध्याय समाप्त हुआ)

नब्बेवाँ अध्याय

(चन्द्रमा के वंश का वर्णन)

सूतजी बोले—हे ऋषियो! चन्द्रमा के पिता अत्रि ऋषि थे, जो बहुत तेजस्वी और ऐश्वर्यशाली थे। वे सभी लोकों की हित की इच्छा से अपनी तपस्या में संलग्न रहते थे। वे सदा शुभ कार्यों में मन वचन और कर्म से तत्पर रहते थे। काष्ठ, भीत पत्थर की चट्टान की तरह अत्रि ऋषि ऊपर की तरफ हाथ उठाकर सदा तपस्या करते रहते थे। देवताओं के हित के लिये महर्षि अत्रि ने तीन हजार वर्षों तक कठिन तपस्या की। ब्रह्मचारी उर्ध्वरेता महर्षि अत्रि ने इतने लम्बे समय तक पलक न मारने की इच्छा की। इस कठिन तपस्या के कारण अत्रि ऋषि का शरीर चन्द्रमा की तरह निर्मल हो गया। आत्मा को वश में रखने वाले भगवान अत्रि के शिरोभाग का तेज बहुत बढ़ गया, ठीक उसी समय दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उनके दोनों नेत्रों से सोम नीचे गिर पड़ा ब्रह्माजी की आज्ञा से दिशाओं ने उस गर्भ को धारण कर लिया, लेकिन एक साथ मिलकर धारण करने पर भी वे उस गर्भ को धारण न कर सकीं। बहुत तेजवान वह गर्भ थोड़ी देर के लिये दिशाओं पर धारण नहीं हुआ, और वे सब स्त्रियां शक्ति हीन होगईं, तो सभी लोकों का मनोभावन शीतल

किरणों वाला वह गर्भ पृथ्वी पर गिर पड़ा प्रजापति ब्रह्मा जी ने उसको पृथ्वी पर गिरा हुआ देखकर उस सोम को अपने रथ पर बिठा लिया। हे द्विजवर्य! इसी सोम चन्द्रदेव प्रकट हुए। जो सभी दिव्यगुण सम्पन्न धर्मार्थ में लगे रहने वाले सत्य प्रतिज्ञ हैं। चन्द्रमा सफेद घोड़ों के रथ पर विराजमान रहते हैं। अत्रि ऋषि के पुत्र चन्द्रमा के इस पृथ्वी पर गिरते समय ब्रह्माजी के सात मानस पुत्रों ने उनकी स्तुति की। अंगिरा और भृगु के पुत्रों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा आंगिरस के मन्त्रों से उनकी स्तुति की। इस प्रकार इन सबकी स्तुति करने पर चन्द्रमा ने अपने तेज से तीनों लोकों को सन्तुष्ट कर दिया, सबको अपने शान्त स्निग्ध प्रकाश से प्रसन्न कर दिया। चन्द्रमा ने ब्रह्मा जी के रथ पर बैठकर सागर तक फैली हुई पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा की। चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह सभी औषधियों के रूप में बदल गया। उन्हीं औषधियों से चन्द्रमा सभी लोकों तथा चार प्रकार की प्रजाओं का पालन करते हैं। हे विप्रगण! इस समस्त संसार को पुष्टि देने वाले भगवान चन्द्रमा ही एकमात्र हैं। अत्रि ऋषि के परम तपोबल से देवों और ऋषियों की स्तुति से और अपने शुभ कर्मों के कारण चन्द्रमा दश पद्म वर्षों तक कठिन तपस्या करते रहे। सुवर्ण के समान शुभ्र वर्ण वाली देवियों के गर्भ से ही परम तेजस्वी चन्द्रमा पैदा हुए और अपने शुभ कर्मों से वे प्रसिद्ध हुये। हे विप्रवृन्द! इसके बाद ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को सभी बीजों का, औषधियों का तथा जल और ब्राह्मणों का सारा कार्य इनके ऊपर छोड़ दिया। इन सबका भार ऊपर आने पर चन्द्रमा का प्रताप तेज बहुत अधिक बढ़ गया, सभी तपस्वियों में आगे रहने वाले चन्द्रमा ने इस पद पर आसीन होकर समस्त संसार को सन्तुष्ट कर दिया। प्रचेता के लड़का दक्ष ने दाक्षायणी के गर्भ से परमतपोनिष्ठा सत्ताईस कन्याओं को पैदा किया और बाद में उन सभी कन्याओं का विवाह चन्द्रमा के साथ कर दिया विद्वान लोग उन्हें नक्षत्र के नाम से पुकारते है। ब्राह्मणों के अधिष्ठाता चन्द्रमा ने इतने

बड़े राज्य पद को प्राप्त करके एक विराट राजसूय यज्ञ किया, इस यज्ञ के अनुष्ठान में लाखों की सम्पत्ति दक्षिणा में दान दी थी। उस विशाल राजसूय यज्ञ में भगवान हिरण्यगर्भ उद्गाता के स्थान पर नियुक्त हुए, ब्रह्मा के पद पर ब्रह्मा जी नियुक्त हुए। सदस्य के स्थान पर नारायण विष्णु नियुक्त हुये, सनत्कुमार प्रभृति आदि महर्षियों सहित उस यज्ञ में विराजमान थे। हे विप्रगणो? उस यज्ञ में चन्द्रमा ने अपने मुख्य मुख्य ऋषियों को दक्षिणा रूप में तीनों लोकों को देदिया। चन्द्रमा की कौसिनी कुहु, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी ये नौ देवियाँ सेवा करती हैं। उस राजसूय यज्ञ का अवभृथ्य स्नान करने के बाद सभी देव ऋषियों से वरदान प्राप्त करके अपने विशाल राज्य के सिंहासन पर विराजमान होकर दसों दिशाओं को तपाने लगे। हे विप्रवृन्द! जिस चन्द्रमा की ऋषि लोग स्तुति करते थे, इतने कठिन ऐश्वर्य को प्राप्त करने के बाद उन्हें घमण्ड पैदा हो गया बृहस्पति जी की तारा नाम की पत्नि को हर कर ले आये, देवताओं और ऋषियों के कहने पर भी वे तारा को लौटाने को राजी न हुए। हे ब्राह्मणो! उन्होंने किसी प्रकार बृहस्पति जी को तारा वापिस नहीं की। उस समय अंगिरा ऋषि के पुत्र शुक्र उनकी सहायता करने लगे। महान तेजस्वी उशना पहले बृहस्पति जी का शिष्य था। उसी प्रेमभाव के कारण रुद्रदेव बृहस्पति जी की सहायता के लिए तैयार हुए और अपने अजवग नामक कठोर धनुष को लेकर वहाँ आए। परम बलशाली रुद्रदेव ने मुख्य मुख्य महर्षियों के तथा देवताओं के उद्देश्य से उस कठोर अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे उसका यश नष्ट होगया। वहाँ प्रत्यक्ष ही तारकामय नाम का युद्ध मच गया, देवों और दानवों के महान युद्ध में सभी लोकों का क्षय हो गया। उस युद्ध में तुषित नाम के तीन देवता बच गए, वे प्रजापति ब्रह्माजी की शरण में आये। पितामह ब्रह्मा जी ने शुक्र तथा भगवान शंकर को युद्ध में से हटा दिया, और तारा बृहस्पति जी को देदी। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तारा को गर्भवती देख कर बृहस्पति जी

उससे गर्भ त्याग करने के लिये कहा। और बोले कि मेरी भूमि में तुम दूसरे वीर्य को किस प्रकार धारण कर सकती हो? इस प्रकार कहने पर भी तारा ने उस दस्यु हन्तमकुमार को नहीं छोड़ा और फिर शीघ्र ही वह कुमार तृणराशि में जलते हुए अग्नि की तरह पैदा हो गया, और उत्पन्न होते समय ही उस परम ऐश्वर्य शाली ने सभी देवताओं को हत श्री कर दिया। सभी देवता आश्चर्य में पड़ गये, और तारा से कहने लगे कि तुम सब सच बताओ कि यह पुत्र किसका है, चन्द्रमा का है या बृहस्पति का। देवों के इस प्रकार बार बार कहने पर भी तारा ने लज्जा वश कुछ न कहा, तब दस्यु हन्तम कुमार उसको शाप देने लगा, तब प्रजापति ब्रह्माजी फिर पूछने लगे कि हे तारे! तुम सत्य बतलाओ कि यह किसका पुत्र है तब तारा ने प्रभु ब्रह्मा जी से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज! यह चन्द्रमा का पुत्र है, तो प्रजापति ब्रह्मा जी ने उसका शिर सूंघ कर परम बुद्धिमान का नाम बुध रखा था। उस समय बुध पूर्व दिशा में घूमने के लिये चल पड़े। राजा की कन्या इला के संयोग से बुध ने एक पुत्र पैदा किया, बुध के परम तेजस्वी पुत्र का नाम पुरुरवा था, वह इला के गर्भ से पैदा होने के कारण ऐल नाम से भी प्रसिद्ध है। बुध ने उर्वशी के संयोग से छः पुत्रों को पैदा किया। चन्द्रमा को तपैदिक रोग हो गया, यक्ष्मा से पीड़ित होकर चन्द्रमा का मुख मण्डल क्षीण होगया, उनकी कान्ति नष्ट होगई तो वे प्रजापति ब्रह्माजी तथा अत्रि के पास आये तो अत्रि ऋषि ने अपने पुत्र के पाप को दूर किया, राज्य यक्ष्मा से ठीक होकर चन्द्रमा का तेज और कान्ति फिर पहले की तरह ही प्रकाशित हो गई। हे विप्र वृन्द! मैंने आप से चन्द्रमा के जन्म का वर्णन किया है अब मैं उनके वंश का वर्णन करूँगा, जो मनुष्य चन्द्रमा के जन्म का वर्णन ध्यान पूर्वक सुनता है उसे धन, आरोग्य, आयु और पुण्य प्राप्त होते है, तथा उनके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

[श्रीवायु महापुराण का चन्द्रमा के जन्म का वर्णन नाम क अध्याय समाप्त]

इक्यानबेवाँ अध्याय

[चन्द्रवंश का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो ! अब मैं आपसे चन्द्रमा के वंश का वर्णन कर रहा हूं। चन्द्रमा के पुत्र बुध पैदा हुये। बुध के पुरुरवा नाम के पुत्र पैदा हुये, वे पुरुरवा बहुत धार्मिक, दानी तथा यज्ञकर्त्ता थे। वह ब्रह्मवेत्ता थे, युद्ध में किसी भी प्रकार शत्रु उनको नहीं हरा सकते थे, वह अग्निहोत्र का उपासक था, उसने यज्ञ करने वालों को सारी पृथ्वी को दान में देदी। वह सदा सत्य बोलता था कर्मशील बुद्धिमान राजा था, वह एकान्त में मैथुन करता था, वह बहुत सुन्दर पुत्र था। उर्वशी अप्सरा ने पुरुरवा को बहुत सुन्दर देखकर अपना मान छोड़कर उसको पति बना लिया। उस उर्वशी के साथ पुरुरवा ने चौंसठ वर्षों तक सुख पूर्वक निवास किया। कभी सुन्दर चैत्ररथ नाम के वन में तथा कभी मन्दाकिनी के सुन्दर तटवर्त्ती प्रान्त में, कभी अलकापुरी में कभी विशालापुरी में, कभी गन्ध मादन पर्वत के शिखरों पर, कभी पर्वतराज सुमेरु की चोटियों पर कभी उत्तर कुरु प्रदेश में, कभी कलाप ग्राम में, कभी सर्वश्रेष्ठ वन में, कभी देवताओं की क्रीड़ा भूमि में उर्वशी के साथ पुरुरवा आनन्द पूर्वक विहार करता रहा।

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठ सूत जी ! राजा पुरुरवा को गन्धर्व की सुन्दरी कन्या उर्वशी ने किस प्रकार सभी देवताओं को छोड़कर उसको पति बनाया, आप हमको इसके विषय में बतलाइये। उर्वशी बहुत सुन्दर दिव्यगुण सम्पन्न कन्या थी।

सूतजी बोले—हे ऋषिगण ! शाप के कारण गन्धर्व की कन्या उर्वशी ने मनुष्य पुत्र राजा पुरुरवा को पति बनाया था, उसने प्रतिज्ञा करके इला के पुत्र पुरुरवा के साथ रहने की व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था उसने शाप से छुटकारा पाने के लिये की थी। उसने कहा था कि "हे राजन् ! मैं आपको कामाशक्ति के बिना कभी नंगा नहीं देखूंगी केवल मैथुन के समय यह नियम नहीं रहेगा। शैय्या के

समय दो मेंढ़ा सदा बँधे रहने चाहिये। और मैं एक समय के आहार में केवल घी ही खाऊँगी। जब तक आप इन नियमों का अच्छी तरह पालन करते रहोगे तब तक मैं आपके पास रहूंगी। यही मेरी प्रतिज्ञा है।" जब तक राजा ने इनका दृढ़ता से पालन किया तब तक सुन्दरी उर्वशी उसके साथ रही। इस तरह ब्रह्म शाप के कारण उर्वशी भक्ति पूर्वक ६४ वर्षों तक राजा पुरुरवा के साथ रही। उधर गन्धर्व लोग उसके वियोग में दुखी रहने लगे।

गन्धर्व लोग बोले—हे महा भागे! परम सुन्दरी उर्वशी जिस प्रकार पुनः देवताओं को प्राप्त हो वह उपाय सोचना चाहिये। बातों में प्रवीण विश्वावसु नामक गन्धर्व ने कहा—हे गन्धर्वो! मेरा तो यह विचार है कि उर्वशी ने उस राजा के साथ कोई प्रतिज्ञा कर रखी है जिसके साथ वह रह रही है। उस प्रतिज्ञा के टूट जाने पर वह उसे अवश्य छोड़ देगी। आप लोगों के कार्य को करने के लिये मैं उसके पास जा रहा हूँ। ऐसा कह कर विश्वावसु ने प्रतिष्ठानपुर के लिये कूच कर दिया। रात में चोरी करके उसने शयनागार से एक मेढ़ा को चुरा लिया। उन दोनों मेंढ़ों पर सदा प्रसन्न मुख वाली उर्वशी का माता के समान प्रेम था। उसे गन्धर्वों के आने का आभास हो गया और जिस समय उसका एक मेढ़ा चुराया जा रहा था उस समय ही उसने राजा से कहा कि मेरा एक पुत्र (मेंढ़ा) चुराया जा रहा है। उस समय राजा नग्न था। उसने सोचा कि यदि मैं इसी तरह नग्न उठ कर जाता हूँ तो यह मुझे नग्न देखलेगी और प्रतिज्ञा भंग हो जायेगी। इस तरह यह मुझे छोड़कर चली जायगी। इसी बीच गन्धर्वों ने उसके दूसरे मेढ़े को भी चुरा लिया। इस पर वह राजा से बोली—हे राजन् मेरे पुत्र दोनों ही अनाथ के समान चुरा लिये गये। ऐसा सुनकर राजा नग्न ही उठकर शैय्या से भागा। गन्धर्वों ने एक चालाकी यह और की कि उसी समय पूरे राज महल को एकदम प्रकाश से युक्त कर दिया। इच्छा से रूप बदने वाली उर्वशी ने राजा को नंगा देख लिया तो वह वह उसी क्षण अन्तर्धान हो गई। उर्वशी को अन्तर्धान जानकर गन्धर्वों ने उन दोनों मेंढ़ों को छोड़ दिया।

और स्वयं भी अन्तर्धान होगये। उन दोनों मेढ़ों को लेकर राजा शयनागर में आये। वहां उर्वशी को न देखकर वह विलाप करने लगा। जगत का स्वामी होने पर भी राजा पूरे जगत का चक्कर लगाने लगा परन्तु उर्वशी को न पा सका। वन, पर्वत, भवन, झरनों बाग, बगीचों, गांव, नगर आदि सभी जगह दुखित होकर राजा सभी देहधारियों से पूछता पूछता घूमने लगा। रो रोकर राजा कहता था–कि मुझे तू क्यों नहीं देखती है। हे सुन्दरी! तू मुझे देखकर मेरे साथ विरोध ठानकर तू कहां चली गई है। मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है। इस प्रकार विलाप करते हुये उस राजा ने उसे कुरुक्षेत्र में देखा। उस समय वह सुन्दरी अन्य पांच अप्सराओं के साथ पुष्करिणी के गम्भीर जल में क्रीड़ा कर रही थी। राजा को आता देखकर उसने सखियों से कहा—कि यह श्रेष्ठ पुरुष तो वही राजा है जिसके पास मैं रहती थी। ऐसा कहने पर वे पांचों अप्सरायें जल से बाहर आईं। राजा ने उर्वशी को देखकर खूब विलाप किया। और प्रसन्न होकर पुनः उससे कहने लगा—हे सुन्दरी! आओ! इसमन में निवास करो। अपनीपूर्व की बातोंपर स्थिर रहो। इस प्रकार उन्होंने सूक्ष्म बातें कीं। अन्त में उर्वशी ने पुरुरुवा से कहा–हे प्रभो! मैं आपके संयोग से गर्भवती हूँ। एक वर्ष में तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा राजा ने एक रात वहां उर्वशी के साथ निवास किया। प्रातः वह राजा अपने पुर को प्रसन्न होकर लौट आया। एक वर्ष बाद वह उर्वशी के पास आया। राजा ने पुनः एक रात उर्वशी के पास व्यतीत की। उस समय कामार्त होकर दीन भाव से बोला–तुम मेरे साथ सदा निवास करो। उर्वशी ने कहा—हे महाराज! गन्धर्वराज आपको ऐसा वरदान देंगे। उन्हीं से आप ऐसी याचना कीजिये कि 'मैं सदा गन्धर्वों के लोक में निवास करना चाहता हूँ।' राजा ने उर्वशी की यह बात मान ली और राजा ने गन्धर्यों से याचना की। कि गन्धर्वों के लोक में मैं सदा निवास चाहता हूं। गन्धर्वों ने राजा से कहा कि "जो आप कहते हैं वैसा ही होगा" उन्होंने स्थाली को

आग से भरकर राजा से कहा हे राजन् ! इसी अग्नि से हवन करने पर तुम्हें उक्त गन्धर्व लोक की प्राप्ति होगी। इसके बाद राजा ने उर्वशी के गर्भ से समुत्पन्न कुमार को लेकर अपने नगर को चलने का उपक्रम किया और उस अग्नि को अराठी में रखकर पुत्र के सहित घर में प्रवेश किया। वहाँ आने पर उन्हों ने उस अग्नि को देखा उसे लेने पर उसे अश्वत्थ के वृक्षों का दर्शन आ। उस समय अश्वत्थ को देखकर राजा को महान अचम्भा हुआ। राजा ने इस बात को गन्धर्वों से जानना चाहा। यह सुनकर गन्धर्वों ने अरणि मन्थन करके अग्नि उत्पन्न करने को कहा। उन्हों ने इस प्रकार कहा—हे नराधिप ! इस अश्वत्थ की अरणी से मन्थन करके जो अग्नि प्रगट हो उसमें हवन करके तुम हमारा लोक पा सकते हो। गन्धर्वों के इस प्रकार कहने पर अरणि मन्थन करके अग्नि निकाल ली और उसके तीन भाग किये। तथा यज्ञ का अनुष्ठान किया। विधि पूर्वक यज्ञ समाप्त करके गन्धर्व लोक प्राप्त कर लिया। वहां उसने सभी प्रकार की गन्धर्वों के तुल्य सुविधायें प्राप्त कीं। त्रेतायुग में यह राजा पुरुरवा महारथी था। अग्नि भी पूर्व काल में एक थे उसने ही उसको तीन भागों में बांटा था।

हे ऋषियो ! इला पुत्र पुरुरवा एक प्रभावशाली और योद्धा राजा था। महर्षियों से सुशोभित प्रयाग तीर्थ में वह राज करता था। उसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर श्री यमुना नदी के उत्तर तट पर बसी थी। उसके इन्द्र के समान तेजस्वी छै पुत्र थे। गन्धर्वों के लोक में भी इनकी बहुत प्रतिष्ठाऔर प्रसिद्धि थी। उनके नामथे आयु श्रीमान, अमावसु, विश्वायु, शतायु, और गतायु ये सब उर्वशी के ही पुत्र थे। अमावसु के पुत्र भीम थे जो विश्व विजयी राजा हुए। भीम का उत्तराधिकारी राजा कांचनप्रभ था। कांचनप्रभ का पुत्र महाबलवान एवं परम विद्वान राजा सुहोत्र हुआ। राजा सुहोत्र के पुत्र जन्हु हुए। ये जन्हु कौशिक के पेट से उत्पन्न हुए थे। उनके यज्ञ करने पर गंगा ने समस्त यज्ञ भूमि को पवित्र किया था। चारों ओर गंगा की धारा

देखकर परमदयालु जन्हु राजा क्रोधित हो गया। उन्हों ने भावावेश में कहा–हे गंगे ! इस घमण्ड का फल तुम शीघ्र पाओगी। तुम्हारे इस जल समूह को पीकर मैं नष्ट किये देता हूँ। ऐसा कह कर राजा ने समस्त गगा को पी लिया। ऋषियों और मुनियों ने ऐसा देखकर गंगा को उनकी पुत्री के रूप में सौंपा। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ गया। जन्हु की पत्नि राजा यौवनाश्व की पौत्र कावेरी नाम की थीं। युवनाश्व के शाप से उसने गंगा का निर्माण किया जन्हु की पत्नि कावेरी समस्त सरिताओं में पवित्र और श्रेष्ठ गुणों वाली थी। जन्हु के कावेरी में सुहोत्र नामक पुत्र हुआ। जो उसको बहुत प्रिय था। उसके अजक नाम का पुत्र हुआ अजक के बलकाश्व नाम का यशस्वी पुत्र हुआ। उसके गयशील और कुश नाम के तीन पुत्र हुए। कुश के कुशाश्व, कुशनाम, अमूर्तरयश और वसु नाम के चार धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। राजाओं में श्रेष्ठ कुशस्तम्ब ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से एक हजार वर्ष तक तपस्या की। एक हजार वर्ष बाद उसे इन्द्र के दर्शन हुए। हजार नेत्र वाले इन्द्र ने स्वयं ही उनका पुत्र होने का निश्चय किया। पाकशासन इन्द्र कुशस्तम्ब के यहां गाधि नाम से उत्पन्न होकर पुत्र रूप में अवतरित ए। इनको कौशिक भी कहते थे। राजा कुशस्तम्ब की पत्नि का नाम पौरुकुत्सा था। जिसमें गाधि का जन्म हुआ था।

गाधि ने अपनी बड़ी कन्या सत्यवती को ऐश्वर्यशाली भृगु गोत्रीय रुचीक को प्रदान किया था। उस सत्यवती में भृगुवंश शिरोमणि जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुये। भृगुवंश में उत्पन्न ऋचीक ऋषि ने अपने और गाधि के पुत्र के लिए एक चरु बनाया। अपनी पत्नि धृति (सत्यवती) को बुलाकर उन्हों ने कहा—हे कल्याणी ! इस चरु को तुम तथा तुम्हारी माता क्रम से खाना। तुम्हारी माता के क्षत्रिय जाति में श्रेष्ठ परम कान्तिमान पुत्र होगा। वह युद्ध भूमि में किसी क्षत्री से कभी भी पराजित नहीं होगा। और तुम्हारा पुत्र भी परमशान्त धैर्यवान और बुद्धिमान होगा। यह चरु उसे ब्राह्मण जाति में श्रेष्ठ

बनायेगा। ऐसा कहकर रचीक तपस्या के लिए जंगल में चले गये।

संयोगदश राजा गाधि भी अपनी पत्नि के साथ तीर्थयात्रा के प्रसंग से अपनी पुत्री को देखने वहां आगये। सत्यवती ने अपनी माता से उन चरुओं का हाल बताया। भाग्यवश उसकी माता ने अपना चरु सत्यवती को दे दिया तथा उसका चरु बिना प्रभाव जाने स्वयं खा लिया। इसके फलस्वरूप सत्यवती ने क्षत्रिय कर्म करने वाला तेजस्वी गर्भ धारण किया। उस समय उसके शरीर की कान्ति बहुत अधिक बढ़ गई, शरीर से वह भयानक दिखाई देने लगी। ऋचीक ने योगबल से यह सारी बातें जानलीं। और पत्नि से बोले–हे भद्रे! माता ने तुम्हें ठग लिया है उसने तुम्हारे चरु को खा लिया है। जिसके कारण तुम्हारा पुत्र परम कठोर चित्त वाला एवं क्रूर कर्म वाला होगा। तुम्हारी माता के परम तपस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। मैंने तुम्हारे उस चरु में समस्त ब्रह्म ज्ञान भर दिया था। ऐसा सुनकर सत्यवती ने पति की बड़ी प्रार्थना की कि मेरा पुत्र ऐसा न हो कि वह नीच ब्राह्मण कहा जाय। इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर मुनि ने कहा—हे भद्रे! यह मैंने या तुमने विचार पूर्वक नहीं किया है कि हमारा पुत्र क्रूर कर्मवाला बने। यहतो दैवयोग से होगया है। प्रायः माता पिता के कारण से पुत्र अकर्मा होते हैं। ऋचीक के इस प्रकार कहने पर सत्यवती ने पुनः कहा "हे नाथ! आप इच्छा करें तो समस्त सृष्टि की पुनः रचना कर सकते हैं ऐसे पुत्र उत्पन्न करने की तो बात ही क्या है। हे पति देव! मुझे परम शान्त, सरल और सत्पुरुष पुत्र दीजिये। यह हो सकता है कि हमारा पौत्र उग्र और कठोर स्वभाव वाला हो जाय। हे प्रभो! मेरे लिये यह तो करना ही होगा। आशा है आप अन्यथा नहीं करेंगे। ऐसे मेरी बारम्बार प्रार्थना है। मुनि ने यह सुनकर अपने तपोबल से उसकी मनोकामना पूर्ण की। और बोले–हे सुन्दरि! मुझे पुत्र या पौत्र में कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ी। परन्तु तुम्हारा आग्रह यदि ऐसा ही है तो मैं वैसा ही करे देता हूं। हे भद्रे तुम्हारी बात सत्य हो।

ऋचीक के वचनानुसार सत्यवती के जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुये। वे परम शान्त, क्षमाशील, तप परायण थे। इस प्रकार प्राचीनकाल में विष्णु और रुद्र के चरु के बदल जाने से रुद्र और विष्णु के तेज के भक्षण करने से जमदग्नि ऋषि भार्गव वंश में पैदा हुये। इधर कुशिक के पुत्र गाधि के विश्वामित्र ऋषि पैदा हुये, विश्वामित्र ऋषि ने ब्रह्मर्षियों की उपाधि प्राप्त करके ब्राह्मणों सहित स्वर्ग को प्राप्त किया। सत्यव्रत परायण वह सत्यवती परम पुण्य शाली महानदी के कौशिकी के रूप में बही। सभी नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नाम से प्रसिद्ध हुईं। इक्ष्वाकुवंश में सुवेणु नाम के एक राजा पैदा हुये, उनके कामला नामकी एक कन्या पैदा हुई, ये रेणुका नाम से भी प्रसिद्ध थीं। उस रेणुका का विवाह ऋचीक के पुत्र जमदग्नि के साथ हुआ, और उन्होंने रेणुका से परम कठोर उग्रस्वभाव वाले परशुराम को पैदा किया, वे परशुराम सभी विद्याओं में पारंगत, विशेषतया धनुर्वेद के परम जानकर क्षत्रियों के नाश करने वाले तथा अग्नि के समान तेजस्वी थे। उर्व के पुत्र ऋचीक से सत्यवती के गर्भ से बड़े पुत्र जमदग्नि पैदा हुये, उनके तपोबल से बीच का पुत्र शुनःशेष पैदा हुये, जो बहुत ज्ञानी थे। शुनःपुच्छ ऋचीक के सबसे छोटे पुत्र थे। धार्मिक विश्वामित्र विश्वरथ के नाम से भी पुकारे जाते हैं। वे कौशिक वंश में सबसे अधिक प्रभावशाली थे। उन्हीं विश्वामित्र के शुनःशेष नाम के पुत्र पैदा हुये। शुनिःशेप नाम के मुनि राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ कर्म में बलिदान देने के लिये नियुक्त हुए थे। देवताओं ने शुनःशेष को पुनः विश्वामित्र को वापस कर दिया। देवताओं के देने के बाद इनका नाम देवरात भी पड़ा था, विश्वामित्र के सभी पुत्रों में देवरात सबसे बड़ा था। इनके अतिरिक्त मधुच्छन्द, नय, कृत, देव, ध्रुव, अष्टक, कच्छप और पूरण ये सभी विश्वामित्र के पुत्र माने जाते हैं। इन सबों के गोत्र प्रायः कौशिकी के ही हैं। पार्थिव, देवरात, याज्ञवल्क्य, समर्षण, उदुम्बर, उदुम्लान तारक, यममुज्जत, लोहिराय, रेणाव, काटीषु, बभ्रु, पाणिन, ध्यान

जप्य, शाला वत्य, हिरण्याक्ष, स्यङ्कृत, गालव, देवल, यामदूत, सालङ्कायन, बाष्कल, ददाति और बादर नाम से प्रसिद्ध वंशों में उत्पन्न होने वालों का परम बुद्धिमान विश्वामित्र का गोत्र है। बहुतेरे कौशिक गोत्र में उत्पन्न होने वालों का विवाह अन्य ऋषि के गोत्र में उत्पन्न होने वालों के साथ हो जाता है। कौशिक, सौश्रुत और सैंधवायन नाम से प्रसिद्ध वंश में पदा होने वाले पुरुरवा के वंश में उत्पन्न पुण्यशाली ब्रह्मर्षियों के गोत्र में कहे जाते हैं। विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम अष्टक था, अष्टक के जह्नुगण नाम के पुत्र पैदा हुये।

ऋषियों ने कहा—हे सूत! इस लोक में पैदा होकर विश्वामित्र प्रभृति क्षत्रिय राजाओं ने किस तरह धर्म तपस्या अथवा ज्ञान से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया, जिन जिन शुभ कर्मों या दान तपस्या द्वारा क्षत्रिय लोग ब्राह्मण हुये, आप हमको उनका वर्णन सुनाइये। ऋषियों के इस प्रकार कहने पर सूत जी बोले—हे, ऋषियो! जो मनुष्य धर्म की इच्छा से अच्छे विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर अन्याय से पैदा हुये धन से यज्ञादि कार्य सम्पन्न करते हैं उनको धर्म का फल प्राप्त नहीं होता। जो पापी मनुष्य अपने घमंड के साथ कहते हैं कि मैं यह धर्म कार्य कर रहा हूँ, इस प्रकार कह कर संसार में अपनी प्रसिद्धि करते हैं उन सब मनुष्य के शुभ कर्मों का फल निष्फल जाता है। वे पापी मनुष्य वास्तव में हिंसा की भावना से धर्म कार्य करते हैं। जो मनुष्य अन्याय द्वारा धन प्राप्त करके मोहवश होकर दुरात्मा, कटकर्मा दान करता है या यज्ञ करता है, वह शीघ्र ही नष्ट होजाता है। इस लिये मनुष्य को न्याय से धन कमाना चाहिये। जो बिना किसी कामना से यज्ञ इत्यादि शुभ कर्मों को करता है उसी को दान का फल प्राप्त होता है। उसको सभी प्रकार से शान्ति, सुख प्राप्त होते हैं। मनुष्य विविध प्रकार के दान कर्म करके स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। अपनी इस गुप्त तपस्या से सबके ऊपर स्थित रहकर निवास करता है। इस प्रकार दानी मनुष्य अनन्त अक्षय सुख प्राप्त करता

है। दान की अपेक्षा यज्ञ की महिमा अधिक होती है, यज्ञ से भी बढ़कर तपस्या कल्याणकारी होती है तपस्या से भी बढ़कर सन्यासी की महिमा अधिक बतलाई है। और सन्यासी से भी बढ़कर ज्ञान प्राप्त करना है। क्षत्रिय गुण कर्म स्वभाव वाले अनेक ब्राह्मणों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। विश्वामित्र मान्धाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, आनृहवान, ऋथु, आष्टिषेण, मजमीढ़, भागान्य, कक्षीव, शिजय, तथा अन्यमहारथी रथीतर, रुन्द, विष्णुबृद्ध इत्यादि क्षत्रिय वंश में पैदा होकर अपनी तपस्या से ऋषियों को उपाधि प्राप्त की है। इन्हीं सभी राजर्षियों ने अपनी कठोर तपस्या के कारण परम सिद्धि को प्राप्त किया है। इसके बाद अब मैं पराक्रमीराजा अयु के वंश का वर्णन करूंगा।

[श्री वायु महा पुराण का चन्द्रमा के वंश का वर्णन नामका इक्या-
नबेवां अध्याय समाप्त]

बानबेवाँ अध्याय

[चन्द्रमा के वंश का वर्णन]

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! पांच महान पराक्रमी राजास्वर्भानु ने अपनी प्रभा नाम की पत्नी से बहुत से पुत्र पैदा किये। इन सब में सबसे बड़े राजा नहुष थे। इनके बाद पुत्रधर्मा पैदा हुये, इनके बाद धर्म वृद्ध के सुत होत्र नामके पुत्र पैदा हुये। राजा सुत होत्र के काश, शल, और गृत्समद नाम के तीन धार्मिक पुत्र पैदा हुये। गृत्समद के शुनक नाम के पुत्र पैदा हुये, शुनक के शौविक नामके पुत्र पैदा हुये। हे विप्रगणो! इस वंश में चारों वर्णों की प्रजाऐं अपने कर्म द्वारा चार भागों में विभक्त हुईं। शलराजा के आर्ष्टि-षेण नाम के पुत्र पैदा हुये, आर्ष्टिषेण के चठत नामके पुत्र पैदा हुये। शौवक और आर्ष्टिषेण के वंशों में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों

की प्रजाएँ उत्पन्न हुईं। काश राजा के काशय नाम के पुत्र पैदा हुए। इनके राष्ट्र और दार्घतपा नाम के दो पुत्र और पैदा हुये। दीर्घतपा के धर्म नाम के पुत्र पैदा हुए। धर्मराजा के धन्वन्तरि नामके पुत्र पैदा हुए। धर्मराजा की वृद्धावस्था में उनकी तपस्या के कारण धन्वन्तरि का जन्म हुआ। ऋषियों ने सूत जी से कहा—

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! इस मनुष्य लोक में धन्वन्तरि का जन्म किस प्रकार हुआ। आप हम को इस विषय में विस्तार पूर्वक बतलाइये।

सूतजी बोले—हे द्विजवर्य! मैं आपको धन्वन्तरि के जन्म के विषय में बतला रहा हूं। प्राचीन काल में समुद्र मथने के समय धन्वन्तरि का जन्म हुआ, वे सबसे पहले अपनी पूर्ण कान्तिमयी शरीर से पैदा हुये थे उनके सभी दिव्यगुण सम्पन्न शरीर को देख कर सभी देवगण अचम्भित होगये। देवगण कहने लगे कि तुम 'अज' हो। इस कारण उनका नाम अज पड़ा, इसके बाद अज ने भगवान विष्णु से कहा हे प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ, हे देवाधिदेव भगवन्! संसार में हमारे लिये स्थान बतलाइये तथा यज्ञादि शुभ-कार्य में अंश की व्यवस्था बतलाइये। अज के इसप्रकार कहने पर भगवान विष्णु ने हे देव! यज्ञ के विधान को बनाने वाले देवताओं ने यज्ञादि अंशों के विभाग की व्यवस्था पहले ही बनादी, महर्षियों ने वेदों में यज्ञ के हवन युक्त प्रक्रिया भी निर्धारित कर दी है। अतः इस कारण तुमको यज्ञ में भाग नहीं मिलेगा। हे सामर्थ्य! तुम केवल नाम से ही मंत्र रूप हो। तुम दूसरे जन्म में इस लोक में स्थान प्राप्त करोगे। तुमको गर्भ में ही अणिमा इत्यादि सभी सिद्धियां प्राप्त होंगी। हे देव! उसी शरीर में तुमको देवयोनि प्राप्त होगी। उस समय ब्राह्मण लोग तुम्हारी घी गन्धयुक्त पदार्थों और खीर से पूजा करेंगे। उसके बाद तुम आयुर्वेद का उद्धार करोगे। प्रजापति ब्रह्माजी ने इन्ही के लिये तुमको सबसे पहले उत्पन्न किया है।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान विष्णु अन्तर्धान होगये। दूसरे द्वापर युग में काशी के राजा दीर्घतपा ने पुत्र इच्छा से तपस्या की। और राजा ने पुत्र के लिये उन्हीं अज देव की पूजा करके सन्तुष्ट किया, तब अज देव ने प्रसन्न होकर उनको पुत्र का वरदान दिया, तभी इन धन्वन्तरि का जन्म हुआ।

राजा बोले—हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे पुत्र रूप में पैदा हों, धन्वन्तरि ने राज. की बात मान ली, और वहीं पर अन्तर्धान हो गये। इस वरदान के अनुसार दूसरे द्वापर युग में दीर्घतपा के पुत्र रूप में धन्वन्तरि ने जन्म लिया। इसके बाद वे सभी रोगों के नाश करने वाले परम वैद्य हुए। भरद्वाज ऋषि ने सभी औषधियों का प्रक्रिया के साथ प्रणयन किया था फिर उसी को आठ भागों में बांट कर अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दी। धन्वन्तरि के केतुमान के पुत्र पैदा हुये। केतुमान के भीमरथ नाम के परम प्रतापी राजा पैदा हुये। ये ही भीमरथी राजा बाराणसी में दिवोदास नाम से प्रसिद्ध हुये, प्राचीकाल में इसी राजा के राज्यकाल में बाराणसी पूरी सूनी हो गई थी। फिर उसमें क्षेमक नाम का राक्षस घुस आया। उसके महा बलवान निकुम्भ ने एक हजार वर्ष तक सूने रहने का शाप दिया था। उसके इस प्रकार शाप देने पर राजा दिवोदास ने वाराणसी को छोड़कर अपनी राजधानी गोमती नदी के किनारे पर बनाई थी।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! प्राचीनकाल में निकुम्भ ने वाराणसी को क्यों शाप दिया था। धर्मात्मा होने पर भी उन्होंने इस पवित्र क्षेत्र को किस प्रकार शाप दिया।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! राजा दिवोदास वाराणसी नगरी में रहता था, उस समय वह अपने समय का सबसे प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा था। इसी अवसर पर भगवान शिव ने देवी पार्वती के साथ विवाह कार्य सम्पन्न किया था और पार्वती को प्रसन्न रखने की इच्छा से

वह अपने सुसर हिमवान के घर पर ही रहने लगे। महादेव जी की आज्ञा से उनके पार्षदगण अनेक रूप धारण करके महेश्वरी देवी को प्रसन्न किया करते थे। उन पार्षदों इस व्यवहार से शिवजी प्रसन्न होते थे, किन्तु मैना इससे असन्तुष्ट होती थीं। वह अपने मन में दोनों शिव पार्वती की बुराई करतीं थीं। एक बार मैना ने अपनी कन्या पार्वती जी से कहा कि पुत्री! तेरे पति हमारे यहां नित्य प्रति अनाचार किया करते हैं और मेरी समझ में तो वह एक धूर्त लम्पट मालूम पड़ते हैं। अपनी माता मैना की इस प्रकार बात सुनकर मन्द मन्द हँसती हुई पार्वती जी अपने पति भगवान शंकर जी के पास आकर दुखी होकर उनसे बोलीं-हे भगवन्! अब मैं यहाँ पर निवास नहीं करूँगी, मुझे अपने स्थान पर ले चलिए। देवी पार्वती के इस प्रकार कहने पर महादेव जी अपने रहने योग्य स्थान को सोचने लगे। हे विप्रो! समस्त संसार में भगवान शिव ने बनारस को ही पवित्र समझा। तब भगवान शंकर वाराणसी नगरी को राजा दिवोदास के आधीन देखकर अपने पास रहने वाले एक गण को बुलाकर कहा कि हे गणेश्वर! तुम वाराणसी नगरी में जाकर उसको खाली करवाओ उस नगरी का राजा दिवोदास बहुत धर्मात्मा है अतः उस नगरी को अपने कोमल स्वभाव से ही खाली कराना। इस प्रकार शिवजी की आज्ञा से निकुम्भ! वाराणसी नगरी में गया, और उसने वहाँ जाकर स्वयं को मङ्कन नाम के राजा को स्वप्न दिखाया और उससे कहा कि तू मेरे रहने के लिए एक स्थान बनवा, और इस नगरी के अंतिम छोर पर मेरी एक प्रतिमा बनवा कर स्थापित करवादे। हे ब्राह्मणो! मङ्कन ने स्वप्न में देखी हुई सभी बातों को पूर्ण कर दिया, राजा से आज्ञा प्राप्त करके नगरी में प्रवेश द्वार पर विधि पूर्वक निकुम्भ की मूर्ति बनाकर स्थापित की। उस स्थान पर निकुम्भ की मूर्ति को सभी नित्य प्रति पूजा किया करते थे, गन्ध, धूप, फूलमाला, अन्न की वस्तुओं के देने से एक अनोखा दृश्य दिखाई देने लगा। और इस प्रकार गणेश्वर की उस स्थान पर नित्य प्रति पूजा होने लगी।

गणेश्वर ने भी पूजा से प्रपन्न होकर नगर में रहने वाले मनुष्यों को हजारों वरदान प्रदान किये, उसने सोचा कि मैं रानी को वरदान न दूँगा, तो राजा नाराज हो जायेगा, और हमारा सारा कार्य पूर्ण हो जायेगा। इस प्रकार बहुत समय बीतने के बाद राजा को क्रोध आ गया, उसने कहा कि यह जो भूत है जो नगर के द्वार देश पर स्थित है, नगर वासियों को प्रसन्न होकर वरदान देता है, किन्तु हमको कुछ नहीं देता है और हमारी प्रजा ही इसकी नित्य प्रति पूजा करती है। मेरी ही नगरी में इसका आवास स्थल है, देवी ने मेरे कहने पर इसकी बहुत पूजा की है लेकिन इसने मेरे लिए एक भी पुत्र देने का वरदान नहीं दिया यह बड़ा खब्बू है इसी कारण आज से इसकी पूजा बन्द करनी चाहिये, इस दुरात्मा का स्थान नष्ट करा दूँगा। इस प्रकार दुरात्मा और क्रूट राजा ने भावी वश होकर निकुम्भ गणेश्वर का स्थान नष्ट कर दिया। अपने आवासस्थल को नष्ट देखकर निकुम्भ गणेश्वर राजा के पास आकर बोले कि तुमने मेरे आवासस्थल को बिना अपराध के ही नष्ट कर दिया इस लिए हे राजा! तुम्हारी यह नगरी बिना किसी कारण के शीघ्र ही सूनी हो जायेगी। हे ऋषियो! निकुम्भ के इसी शाप के कारण ही वाराणसी नगरी सूनी हो गई थी। अतः इस प्रकार राजा को शाप देकर निकुम्भ ने भगवान शंकर को वहां रहने के लिए बुलाया भगवान जी ने सूनी वाराणसी नगरी का दैविक विभूतियों से पुनः निर्माण किया, उसमें भगवान शंकर का परम दिव्य गुणमयी पार्वती के साथ नित्य विहार होने लगा। अपने इस भवन को देख उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ लेकिन कुछ दिन के बाद उन्हें इस मकान से सन्तोष नहीं हुआ, तब ईशानदेवी ने देवी पार्वती के क्रीड़ा विहार के लिए उनसे यह बात कही थी 'हेदेवी मैं अपने इस सुन्दर भवन को नहीं छोड़सकता, तुम ना चाहो तो छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चली जाओ, मैं तो यहीं पर रहूँगा।

इस प्रकार हँसते हुये महादेव जी ने देवि पार्वती से कहा कि मेरा जो यह भवन है यह अविमुक्त है, मैंने इसे अपने मुख से अविमुक्त किया था अतः इसी कारण इसका नाम अविमुक्त पड़ा था। इस तरह वाराणसी पुरी को शाप दिया था और उसका नाम अविमुक्त पड़ा। उस वाराणसी नगरी में महादेव जी अपनी प्राण-प्यारी देवि पार्वती के साथ तीनों युगों में निवास करते हैं। लेकिन कलियुग में शिवजी अपने इस भवन से अन्तर्धान हो जाते हैं। उनके अन्तर्धान होने पर वाराणसी पुनः वहां पर स्थित होता है। इस प्रकार निकुम्भ के शाप से श्रापित होकर वाराणसी नगरी पुनः वहां पर स्थापित होती है। प्राचीन काल में दिवोदास राजा ने भद्रश्रेण्य राजा के सौ पराक्रमी पुत्रों को मार कर उनके राज्य को छीन लिया, साथ में भद्रश्रेण्य के भी राज्य को छीन लिया। भद्रश्रेण्य के एक दुर्दम नाम के छोटे पुत्र को निपट बालक समझ कर घृणा से उसे छोड़ दिया। राजा दिवोदास ने द्रषद्वती नाम की पत्नी से प्रतर्दन नाम का पुत्र पैदा किया। भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम के पुत्र ने राजा दिवोदास के पुत्र प्रर्तदन से छीन कर अपने पिता का राज्य वापिस ले लिया। इस राज पुत्र ने अपने वैर का बदला इस प्रकार लिया था। प्रतर्दन के वत्स और गर्ग नाम के दो पुत्र पैदा हुये। वत्स के अलर्क नाम के पुत्र पैदा हुये अलर्क के सन्नति नाम के पुत्र पैदा हुये। राजर्षि अलर्क के विषय में दो श्लोक बताये जाते हैं। इन श्लोकों का आशय इस इस प्रकार है। साठ हजार साठसौ वर्षों तक अलर्क राजा युवा बने रहे, उन्हें लोपामुद्रा की कृपा से इतनी बड़ी आयु प्राप्त हुई थी। एक हजार वर्ष के शाप के बाद राजा अलर्क ने क्षेमक नाम के असुर को मार कर पुनः वाराणसी नगरी को बसाया था।

राजा सन्नति के सुनीथ नाम के पुत्र पैदा हुए, सुनीथ सुकेतु नाम के पुत्र पैदा हुये. वह पुत्र बहुत धार्मिक स्वभाव का था। सुकेतु के धर्मकेतु नाम के पुत्र पैदा हुए, धर्मकेतु के महारथी सत्यकेतु नाम के पुत्र पैदा हुए, सत्यकेतु के प्रजेश्वर विभ्र नाम के पुत्र पैदा हुये। विभ्र के सुविभ्रनाम के पुत्र पैदा हुये। सुविभ्र के सुकुमार नाम के पुत्र पैदा हुये। सुकुमार का परम धार्मिक धृष्ठकेतु हुआ। धृष्टकेतु का उत्तराधिकारी प्रजापालक वेणुहोत्र हुआ, वेणु होत्र का पुत्र गार्ग्य नामक हुआ। गार्म्य का पुत्र गर्भभूमि हुआ। वत्स्य का पुत्र वात्स्य हुआ। इन दोनों वर्णों के राजा बलशाली तथा योद्धा थे। ये सिंह के समान बलशाली थे। मैं काशी के राजाओं का वर्णन तो कर चुका अब रजि के पुत्रों का वर्णन करूँगा। महाराज रजि के सौ पुत्र थे। उनमें से पांच इस भूलोक में अधिक विख्यात थे। वे राजेय कहलाते थे। उनके बल से इन्द्र भय खाते थे। उस समय देवताओं और राक्षसों में महान युद्ध हुआ। देवता और असुर दोनों ने ब्रह्मा जी से पूछा। भगवान हम दोनों वर्गों के इस घमासान युद्ध में कौन जीतेगा हे प्रभो! यह जानना चाहते हैं सो कृपा करके बताइये—ब्रह्माजी बोले—

जिन लोगों के लिये महान पराक्रमी महाराज रजि संग्राम में हथियार लेकर लड़ेंगे वे तीनों को जीत लेंगे। जहां रजि राजा है वहीं पर लक्ष्मी निवास करती हैं। वहीं पर धैर्य और शान्ति रहती है। देवता और दानवों ने रजि के द्वारा जय की बात सुनकर अपने अपने पक्ष की विजय के लिये राजा रजि से प्रार्थना की। दोनों ने अति प्रसन्नता से राजा से कहा—कि आप हमारे लिये धनुष को धारण करके हमें विजयी बनाने की कृपा करें राजा ने कहा—हम तुम सबको और इन्द्र को भी युद्ध में हरा देंगे। इसके बाद हमही इन्द्र होंगे। यह शर्त मानो तो युद्ध में मैं धनुष धारण करूँगा!

दानव कहने जगे—कि हमारे तो इन्द्र प्रहलाद जी हैं उनकी विजय के लिये हमारी इच्छा है। परन्तु देवों के द्वारा प्रेरित इस

प्रतिज्ञा से हम सहमत हैं।' दानवों की यह बात सुनकर राजा उनकी शर्त मन्जूर कर ही रहे थे कि इतने ही में देवता लोग उठे–और कहा कि आप दैत्यों को परास्त करके हमारे इन्द्र बन जाइए। देवताओं की यह बात सुनकर देवराज इन्द्र के देखते देखते ही उन्होंने सभी दानवों का विनाश कर दिया। इस प्रकार जितेन्द्रिय प्रभावशाली राजा रजि ने देवों की नष्ट होती हुई राजलक्ष्मी का उद्धार किया। देवों की विजय होने पर सभी देवता तथा इन्द्र मिलकर राजा से बोले—हम सब आपके पुत्र हैं। इन्द्र ने भी कहा—महाराज आप हमारे इन्द्र हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे शत्रुओं को मारने वाले राजन्! मैं आपके पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हूंगा। शक्र की इस प्रकार की बातों से वे राजा मोहित हो गए और राज छोड़ दिया।

देवतुल्य राजा रजि को मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रों ने इन्द्र से राज छीन लिया। राजा के सौ पुत्रों ने एक साथ ही राज जमा कर एक साथ स्वर्ग को आक्रान्त कर दिया। बहुत समय बीत जाने पर हतभाग्य इन्द्र वृहस्पति जी के पास पहुँचे और कहा–हे ब्रह्मर्षि! आप एक चरु बनावें जो बेर के फल के बराबर हो वह अंश मेरे लिए हो जिससे मैं टिक सकूँ। उसी से मेंरी सन्तुष्टि होगी। मेरी दशा अधिक शोचनीय है मेरी दशा खराब है इस समय मैं अधिक कमजोर हो गया हूँ। मेरी बुद्धि नष्ट होगई है। रजि के पुत्रों से मेरी रक्षा कीजिये।

वृहस्पति बोले—हे इन्द्र! यदि पहले ही तुम मुझे अपनी दशा बतलाते तो तुम्हारी यह दशा न होती। मैं तुम्हारे कल्याण के लिये सब कुछ कर सकता हूँ। हे देवराज! तुम्हारे लिए मैं वही करूँगा जिससे तुम्हारा राज्य तुम्हें वापिस मिल सके। हे शक्र! मैं शीघ्र ही वसा ही कर रहा हूं तुम अपने मन की आकुलता छोड़ दो। इस प्रकार इन्द्र को सान्त्वना देकर गुरु वृहस्पति जीनेअनेकअनुष्ठान किए। और उनसे रजि के पुत्रों को मोहित कर दिया। इससे उन सबकी बुद्धि मारी गई। वे सभी राजा धर्म से हीन हो गये और रोगग्रस्त तथा

पागल होगये। ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे। उनका बल एवं पराक्रम नष्ट हो गया। वे सभी काम क्रोध आदि से मोहित हो गए तभी इन्द्र ने उनका विनाश कर दिया। और पुनः अपना प्रभुत्व जमा लिया। जो पुरुष इस इन्द्र के पुनः राज्य प्राप्ति के तथा राजा रजि के कथानक को पढ़ता या सुनता है उसकी कभी बुरी गति नहीं होती।

(इति श्री वायुमहापुराण का रजियुद्ध नामक बानवेवाँ अध्याय समाप्त)

तिरानबेवाँ अध्याय

[चन्द्रवंश का वर्णन]

ऋषि बोले—हे सूत ज ! महापराक्रमशाली मरुत ने राजा को कन्या किस प्रकार दी थी और मरुत की कन्या से राजा के कितने पराक्रमी पुत्र हुये। यह कथा प्रसंग भी हमको बताने की कृपा कीजिये।

सूत जी बोले–उस महा तेजस्वी राजाने प्रत्येक महिने मेंअन्न की इच्छा से मरुत और सोम का यज्ञ किया। उससे प्रसन्न होकर मरुतों ने अक्षय अन्न दिया। वे सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले थे। एकबार का वह पकाया अन्न दिन रात में भी समाप्त नहीं होता था। सूर्योदय से करोड़ों बार दिये जाने पर भी वह नहीं चुकता था। मरुत की कन्या में मित्र ज्योति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उससे महा पराक्रमी मोक्षदर्शी धार्मिक पुत्रों की सृष्टि हुई। जो गृहस्थाश्रम त्यागकर वैराग्य पथ के अनुगामी बने। और अन्त में सन्यासियों के धर्म को अपनाकर मोक्ष को प्राप्त हुये। इसके बाद अनपान की उत्पत्ति हुई। जिससे प्रदत्तवान का जन्म हुआ। उससे क्षत्रधर्म की उत्पत्ति हुई। क्षत्रधर्म से तपस्वी प्रतिपक्ष की उत्पत्ति हुई। प्रतिपक्ष के पुत्र संजय नामक पुत्र पैदा हुए। संजय के पुत्र जय हुये और जय से विजय नामक पुत्र हुआ। विजय का पुत्र भी जय नाम का ही हुआ, जय का पुत्र हर्यद्वत नाम से विख्यात हुआ। उसके पुत्र राजा सहदेव हुये। सहदेव के पुत्र धर्मात्मा अदीन नाम से प्रसिद्ध हुए। अदीन से जयत्सेन जयत्सेन से

संकृति नामक पुत्र पैदा हुये। संकृति के पुत्र प्रतापी राजाकृतधर्मा हुये। ये सब राजा गण क्षत्रिय कर्म व गुण वाले थे।

अब राजा नहुष के वंश का वर्णन सुनिये। नहुष के छै पुत्र इन्द्र के समान तेजस्वी हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—यति, ययाति, संयाति, आयाति तथा दो पंच नामक पुत्र थे। इन सबमें यति सबसे बड़े तथा ययाति सबसे छोटे थे। यति की पत्नि राजा काकुत्स्थ की कन्या गौ नाम वाली थी। संयाति ने मुनियों के समान मोक्ष का आश्रय लिया। इन पांचों में ययाति ही पृथ्वी का राजा बना। ययाति ने शुक्राचार्य की कन्या देवयानी के साथ विवाह किया। असुरों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ भी शादी करके उसे अपनी पत्नि बनाया। देवयानी से वसु और तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए तथा शर्मिष्ठा से द्रह्यु, अनु और पुरु नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। महादेव जी ने राजा ययाति को प्रसन्न होकर परम सुन्दर स्वर्ण निर्मित एक दिव्य रथ प्रदान किया था। तथा दो तरकश भी दिये उस परम मनोहर रथ में मन के वेग वाले घोड़े जुते हुए थे। उस रथ पर चढ़कर शुक्राचार्य की पुत्री देवयनी के साथ राजा ययाति ने समस्त पृथ्वी को जीता। समस्त पुरुवंशी राजाओं ने उस महादेव जी के दिए रथ को व्यवहार किया। कुरुवंशी राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय शासन के लिए सिंहासन पर बठे। उस समय भी वह रथ उनके पास था। परम बुद्धिमान गार्ग्य के शाप के द्वारा वह रथ नष्ट हो गया। जनमेजय ने बुद्धिहीन होकर गार्ग्य के पुत्र को मार डाला था। इस पर उन्होंनें जनमेजय को लोहे की सी गन्ध वाला हो जाने का शाप दे दिया। लोह गन्ध होकर राजा जनमेजय इधर उधर बहुत दौड़े पर शान्ति न मिली। ग्राम में रहने वालों ने भी उनका तिरस्कार कर दिया। अन्त में वे दुखी होकर उन्हीं ऋषि की शरण में गए। तब इन्त्रोत नाम मुनि ने जो शुनक के गोत्र के थे, एक यज्ञ कराया जो अश्वमेध यज्ञ ही था। इस प्रकार उन्हीं ऋषि के

आश्रम में राजा का लोह गन्धत्व दूर हो गया। वह सोने का रथ भी चेदि देश के राजा वसु के आधीन हो गया। वसु से इन्द्र ने ले लिया। इन्द्रने वह दिव्य रथ प्रसन्न होकर राजा बृहद्रथ को दिया था। वृहद्रथ को मारकर जरासंध ने उसे छीन लिया। जरासंध से वह रथ भीम ने प्राप्त किया। कौरव पुत्र भीम ने उस रथ को आदर पूर्वक वासुदेव को भेंट किया।

राजा नहुष के पुत्र ययाति जब अधिक वृद्ध होगये तो अपने योग्य पुत्र यदु से बोले कि शुक्राचार्य के शाप से मैं वृद्ध होगया हूँ तुम मेरी इस वृद्धता को ग्रहण करलो क्योंकि मैं अभी यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हुआ हूं। इस पर यदु ने पिता से कहा कि पिता जी मैंने अनन्त काल तक ब्राह्मणों को दान देने की प्रतिज्ञा की है भिक्षा परिश्रम के द्वारा ही की जा सकती है इससे मैं बुढ़ापा ग्रहण नहीं कर पाऊँगा। दूसरे इस बुढ़ापे में भोजन पान आदि के बहुत से दोष आ जाते हैं इसलिये इसे स्वीकार करने का मुझमें उत्साह नहीं है। श्वेत बाल होजाने पर यह बुढ़ापा एकदम शिथिलता पैदा कर देता है। शरीर में सिकुड़न, चहरे पर भद्दापन दुर्बलता, कार्य करने की शक्ति का अभाव, तथा यौवन के सुखों को प्राप्त करने में असमर्थता प्राप्त हो जाती है। ऐसी महान विपत्तियों वाली बृद्धता को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। हे राजन्! आपके अन्य पुत्र भी हैं जो आपको मुझसे अधिक प्रिय हैं। आप उनको इस प्रस्ताव को कहें। इस पर राजा ययाति क्रुद्ध होकर यदु से बोले—तू मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे यौवन नहीं दे सकता इसलिए तू या तेरी सन्तान मेरे इस राज्य की उत्तराधिकारी नहीं हो सकती। यह मैं तुझे शाप देता हूँ।

इसके बाद राजा ने अपने पुत्र तुर्वसु से कहा कि तुम मुझे एक हजार वर्ष के लिये अपनी युवावस्था देदो! उससे मैं यौवन के सुखों को भोगना चाहता हूं एक हजार वर्ष बाद मैं उसे वापिस कर दूँगा।

तुर्वसु ने कहा—हे तात! विषयादि सुखों से रहित इस वृद्धावस्था को मैं पसन्द नहीं करता हूं। इससे तो भोजन आदि में भी परेशानी

रहती है। अतः इसको लेने का मुझमें साहस नहीं है।

ययाति बोले—हे तुर्वसो! मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मेरे लिये अपनी युवावस्था नहीं दे रहे हो अतः तुम्हारी सन्तानें नाश को प्राप्त होंगी। वे वर्ण शंकर हो जायेंगी। धर्म हीन, मांस भक्षी, दुराचारी लोगों के तुम राजा बनोगे। गुरु की पत्नि के साथ गमन करने वाले, नीच योनि में उत्पन्न, पशु तुल्य अज्ञानं तथा म्लेच्छ के देशों में तुम राजा बनोगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! तुर्वसु को इस प्रकार शाप देने के बाद राजा ने शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्य से भी कहा—कि वर्ण एवं रूप का नाश करने वाली इस वृद्धता को तुम स्वीकार करलो। एक हजार वर्ष के लिये मुझे अपनी जवानी दे दो। उसके बाद मैं तुम्हारी जवानी वापिस करके बुढ़ापा ले लूंगा।

द्रुह्य ने कहा—हे पिता जी! वृद्ध पुरुष न तो हाथी की सवारी कर सकता है और न घुड़सवारी का मजा प्राप्त करता है। न स्वादिष्ट अन्न का भोग कर सकता है और न सुन्दरी स्त्रियां आनन्द दायिनि हो सकती हैं। वृद्ध पुरुष के पास तो कोई भी बैठना भी नहीं चाहता। इसलिये मैं इसे पसन्द नहीं करता हूँ।

ययाति बोले—हे द्रुह्य! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी अवस्था नहीं दे रहे हो। अतः तुम्हारा मन चाहा कभी भी पूर्ण नहीं होगा। जिस देश में लोग छोटी छोटी नावों और घन्नइयों से जाते हैं तथा जहां सुन्दरता का बिलकुल अभाव और राजवंशों से अलग स्थान में तुम रहोगे। इसके बाद राजा ने अनु से कहा—कि मेरी वृद्धावस्था तथा पाप कर्मों को तुम ले लो। एक हजार वर्षों तक मैं तुम्हारी यौवनवस्था से विषय भोगों का आनन्द प्राप्त करना चाहता हूँ।

अनु बोला—हे तात! आप तो वृद्ध हो गये हैं। मैं अभी बालक हूं आपकी वृद्धावस्था से मैं सदा अपवित्र बना रहूँगा तथा बूढ़ा हो जाऊँगा। इस लिये मैं उसे नहीं ले सकता हूँ।

ययाति बोले—हे पुत्र ! तुम मेरे हृदय से पैदा होकर भी अपना यौवन नहीं दे रहे हो बृद्धावस्था के वे सभी दोष जो तुमने मुझे बतलाये हैं वह तुमको प्राप्त होंगे। तुम्हारी सन्तानें युवा होते ही मर जाया करेंगी। तुम भी अग्नि में गिर कर भस्म होगे। अनु को यह शाप देकर राजा ययाति छोटे पुत्र पुरु से बोले–तुम मेरे पापों के साथ मेरी बृद्धता को ग्रहण करलो। यद्यपि मेरे केश सफेद हो गये हैं खाल सिकुड़ गई है और बुढ़ापा आ गया है परन्तु शुक्राचार्य के शाप के कारण मैं यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हुआ हूँ। तुम्हारी यौवनावस्था से मैं कुछ काल तक विषयों का आनन्द लेना चाहता हूं। एक हजार वर्ष बाद मैं उसे लौटा दूंगा।

सूत जी बोले—पिता की आज्ञा सुनकर पुरु ने तुरन्त कहा–पिता जी आपकी जो भी आज्ञा है मैं वैसा ही करूँगा। आपके पाप कर्मों सहित बुढ़ापे को लेने को तैयार हूँ। मेरी जवानी से आप मन चाहे विषयों को भोग सकते हैं। मैं आपको यौवन देकर आपकी बृद्धता और स्वरूप को धारण कर आपके समान सब काम करूंगा।

ययाति बोले–हे प्रिय पुत्र पुरु ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारे राज्य में प्रजा समृद्ध और सुखी रहेगी और तुम्हारे राज्य में सारी प्रजाओं की कामनायें भी पूर्ण होंगी।

सूत जी बोले—इस प्रकार ययाति ने शुक्राचार्य की कृपा से अपना बुढ़ापा पुरु को देकर उसके यौवन को स्वयं ने ले लिया। और प्रसन्नता पूर्वक अनेक विषयों का खूब भोग किया। राजा ने अपनी इच्छा के अनुसार, उत्साह के अनुसार भोगों को खूब भोगा परन्तु ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जिसके कारण धर्म की मर्यादा नष्ट हो जावे यज्ञों से देवता सन्तुष्ट किये, श्राद्धों से पितर सन्तुष्ट किये। अनुग्रह करके गरीबों का हित साधन किया। मन चाहे पदार्थों की पूर्ति करके ब्राह्मणों को प्रसन्न किया व्यापार से वैश्यों को तुष्ट किया। कृपा और दयाभाव से शूद्र प्रसन्न किये। कड़े दण्ड

और अनुशासन से चोरों को शान्त किया। इस प्रकार उस राजा ने इन्द्र के समान प्रजा का पालन किया। युवावस्था प्राप्त राजा ययाति ने सिंह के समान पराक्रम से धर्म पूर्वक विषयों का सेवन किया। और सुख का अनुभव किया। वैभ्राज और नन्दन वनों में उसने विश्वाची के साथ काम क्रीड़ा की। अन्त में कामादि विषयों में दुख देखकर उन्हें विषयों से वैराग्य हुआ। अपनी अवधि का ज्ञान करके वे अपने पुत्र पुरु के पास आये। और उससे अपना बुढ़ापा पुनः वापिस प्राप्त किया। घड़ी पल तक का हिसाब लगाकर उसने एकहजार वर्षों की गणना की और सचमुच पूर्ण अवधि समाप्त हो जाने पर अपने प्रिय पुत्र पुरु से बोले–हे शत्रु दमन पुत्र, पुरु! मैंने एक हजार वर्ष तक अपने उत्साह और मन के अनुसार तुम्हारी यौवनावस्था लेकर विषयों का सेवन किया। हे प्रिय! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो अपनी यौवनावस्था ग्रहण करो तथा इस राज्य को भी ग्रहण करो, तू मेरा एकमात्र हित चिंतक पुत्र है। इस प्रकार राजा ययाति ने अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की और पुरु ने अपना यौवन प्राप्त किया।

राज्य के पद पर जब इस छोटे पुत्र को बिठाना चाहा तो ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लोग राजा के पास आकर बोले–हे प्रभो! आप शुक्राचार्य के नाती अर्थात् देवयानी के पुत्र यदु को राज क्यों नहीं देते हो। यदु आपके सबसे बड़े पुत्र हैं उनसे छोटे तुर्वसु हैं, शर्मिष्ठा के भी पुत्रों में भी सबसे बड़े द्रुह्य हैं। उनसे छोटे अनु हैं इसके बाद पुरु हैं। यह कैसे हो सकता है कि बड़ों को छोड़कर छोटे को राज्य दे दिया जाय। आपका ध्यान धर्म की ओर आकर्षित करते हुये आपसे धर्म का पालन करने को कहा जा रहा है क्योंकि आप राजा हैं।

ययाति ने कहा—हे ब्राह्मण आदि सभी वर्णों के सज्जनो! मेरी बात सुनिये कि जो पुत्र माता पिता का आज्ञाकारी होता है

वही पुत्र प्रशसा के योग्य है। बड़े पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया था! जो पुत्र पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता वह निन्दनीय होता है। यदु ने मेरी आज्ञा नहीं मानी। इसी तरह से तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु ने भी आज्ञा न मानकर मेरा अपमान किया है। पुरु ने मेरी आज्ञा ही नहीं मानी अपितु मेरा बड़ा सम्मान भी किया है। सबसे छोटा होने पर भी इसीसे यह राज्य का उत्तराधिकारी है। क्योंकि इसने मेरे बुढ़ापे को इतने समय तक अपने लिये रखा। एक योग्य पुत्र की भाँति इसने मेरी सभी अभिलाषाओं और आज्ञाओं का पालन किया है। यही सब कुछ करने धरने वाला है। स्वयं शुक्राचार्य जी ने भी यही आज्ञा दी है कि "जो तुम्हारा पुत्र आज्ञाकारी और अनुगामी होगा वही राजा बनेगा।" मैं अब समझता हूँ आपकी भी आज्ञा इस कार्य में होगी। अतः पुरु का राज्याभिषेक करिये। गुणवान, माता पिता की आज्ञा मानने वाला पुत्र ही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और कल्याण का पात्र होता है। इस राज्य के योग्य पुरु ही ऐसा है जो आपका हितकारी है, प्रिय है तथा हम सबों को भी प्रिय है।

ऐसा कहने पर ब्राह्मण आदि सभी पुरवासियों ने राजा ययाति की बात का मोदन किया। शुक्राचार्य के वरदान के कारण उनको कुछ कहने का भी साहस नहीं हुआ राजा की बात से सन्तुष्ट हुये नगर वासियों ने तथा नहुष के पुत्र ययाति ने अपने छोटे पुत्र पुरु का राज्य के पद पर अभिषेक कर दिया। दक्षिण पूर्व दिशा में उसने तुर्वसु को अधिकारी बनाया। दक्षिण पश्चिम में बड़े पुत्र युदु को राज का अधिकारी नियुक्त किया। उत्तर पश्चिम में द्रुह्यु और अनु को बनाया। इस प्रकार सात सागर युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को पाँचों पुत्रों में बाँट दिया। धार्मिक सभी पुत्रों ने धर्म पूर्वक अपने अपने प्रदेशों का पालन किया। इस प्रकार अपने पुत्रों को राज्य देकर राजा ययाति परम प्रसन्न हुये। राजा ययाति ने अपने धनुष बाण और राज्यधिकार को पुत्रों को सौंप दिया और सभी कार्य के

भार को अपने बन्धुओं को सौंप दिया। इसके विषय में राजा ययाति ने अपने पुत्रों से इस प्रकार कहा—जो मनुष्य सभी प्रकार की इच्छा को वश में रखता है वही सच्चा मनुष्य है। मन की इच्छा के अनुकूल पदार्थ मिलने पर उसकी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती है उसको शान्ति नहीं मिलती है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर जितना अन्न, सुवर्ण, पशु, स्त्रियां है, उन सबको मिलाकर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती है। जो मनुष्य इस प्रकार सोचता है, वह ज्ञानवान होता है। मनुष्य जब सभी जीवों में कर्म से, मन से तथा वचन से एक समान बर्ताव करते हैं तब मनुष्य को ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। तृष्णा को छोड़ देने पर ही मनुष्य को सुख मिलता है। वृद्धावस्था आने पर बाल सफेद हो जाते हैं, दांत टूट जाते हैं, लेकिन जीवन और धन की आशा नहीं छूटती है। कामनाओं की पूर्ति होने पर तथा अपने मन के अनुकूल सभी दिव्य पदार्थों के मिलने से जो सन्तोष होता है, उस सन्तोष से सोलह गुना अधिक कहीं तृष्णा के नष्ट हो जाने पर सन्तोष होता है। इस प्रकार राजा ययाति अपने पुत्रों को शिक्षा देकर स्त्री सहित वन में तपस्या करने चले गये। उन्होंने वन में मृगतुङ्ग नाम के स्थान पर तपस्या करके वहीं पर सौ व्रतों का विधि पूर्वक पालन किया, और स्वर्ग पधार गये। देवर्षियों के आदर करने योग्य ये पांच वंश हैं, जो सूर्य की किरणों के समान सम्पूर्ण पृथ्वी को घेरे हुये हैं। जो विद्वान मनुष्य राजा ययाति के इस उत्तम चरित्र का ध्यानमग्न होकर पाठ करता है या उसको सुनता है, उसे धन, धान्य, सन्तानें, पूजा, दीर्घायु और यश कीर्ति प्राप्त होती है।

[श्री वायु महा पुराण का चन्द्र वंश का वर्णन नामक
तिरानबैवां अध्याय समाप्त]

चौरानबैवाँ अध्याय

[कार्तिवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं आपको राजा ययाति के के सबसे बड़े पुत्र यदु के वंश का वर्णन करूंगा। यदु के पांच

पराक्रमशाली पुत्र पैदा हुये, इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम सहस्राजित था, और दूसरे पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—क्रोष्टु, नील, जित, और लघु । सहस्रजित के परम कान्तिमान राजा शतजित नाम के पुत्र पैदा हुये। शतजित् के तीन धार्मिक पुत्र पैदा हुये, हैहय, हय, सारे राजा रेणुहय इनके नाम थे। हैहय राजा के वेणुतन्त्र नाम के पुत्र पैदा हुये, वेणुतन्त्र के कीर्ति नाम के पुत्र पैदा हुये, [illegible]त के संज्ञेय नाम के पुत्र पैदा हुये। सज्ञेय के महिष्मान नाम के पुत्र पैदा हुये, महिष्मान के भद्रश्रेण्य नाम के पुत्र पैदा हुये। ये राजा भद्रश्रेण्य वाराणसी पुरी के राजा थे। फिर राजा भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम के पुत्र पैदा हुये, दुर्दम के कनक नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, कनक के चार महान पुत्र पैदा हुये, इन पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं–कृतवीर्य, कार्तिवीर्य, कृतवर्मा और कृत नाम थे। कृतवीर्य से अर्जुन नाम के पुत्र पैदा हुए। राजा अर्जुन के एक हजार भुजाएँ थी और वह सातों द्वीपों का राजा था राजा कार्तिवीर्य ने दस हजार वर्षों तक अत्रि के पुत्र दत्त की पूजा की थी, फिर दत्त ने प्रसन्न होकर महत्वपूर्ण चार वरदान राजा कार्तिवीर्य को दिये, इन में सबसे पहला वरदान एक हजार भुजा वाले पुत्र का था, दूसरा वरदान इस लोक में अधर्म बढ़ता हुआ जानकर सदुपदेशों का प्रचार करना, तीसरा वरदान धर्म पूर्वक पृथ्वी को जीतकर उस पर धर्म पूर्वक ही प्रजा का पालन करना, चौथा वरदान इस प्रकार था कि युद्ध में विजय प्राप्त करके हजारों शत्रुओं का नाश करके युद्ध भूमि में अपने से अधिक बलशाली के हाथ से मरना। इन वरदानों को प्राप्त करके कार्तिवीर्यार्जुन ने सभी नगरों और पृथ्वी को जीत कर सातों द्वीपों तक फैली हुई पृथ्वी पर क्षत्रियधर्म स्थापित किया। उस परम चतुर महाराज के युद्ध करते समय उसकी माया से एक हजार बाहु हो जाते थे, और हजारों रथ, घोड़ा, लड़ने वाले वीर योद्धा तथा अनेक ध्वजाएँ माया से हो जाती थी। उस कार्तिवीर्य ने अपने राज्य में दस हजार यज्ञों का अनुष्ठान किया था, और उनके वे

सभी यज्ञ निर्विघ्न पूर्वक समाप्त भी हो गये थे। उन सब यज्ञों में सुवर्ण की वेदियां बनाई थीं और सुवर्ण के ही लट्ठे गढ़वाये थे। सभी ऐश्वर्यशाली राजा और देवता लोग अपने विमानों में चढ़ कर आते थे अनेक गन्धर्व और अप्सरायें आकर उनके यज्ञ मण्डल की शोभा बढ़ाते थे। नित्य गन्धर्व लोग राजा का यशोगान गाते थे। राजा कार्तिवीय की इस प्रकार महिमा और वैभव को देख नारदजी भी गुणगान किया करते थे। उस समय मनुष्य योनि में जन्म लेने वाला कोई भी राजा उनके, यज्ञ, दान, तपस्या, पराक्रम, बल पांडित्य की बराबरी में न था। सातों द्वीपों का वह राजा अपने धनुषबाण और तलवार लेकर रथ पर सवार होकर भी पीछे पीछे चलता दिखाई देता था। उसके राज्य में मनुष्य को किसी प्रकार दुख नहीं होता था किसी का धन चोरी नहीं होता था। उस राजा के राज्य में सभी प्रजासुखी रहती थी। राजा कार्तिवीर्य इस प्रकार पालन करके प्रजा की रक्षा करते थे तथा स्वयं ही खेती बारी की देखभाल भी करते थे। राजा कार्तिवीर्य ने धर्मपूर्वक इस प्रकार पिच्यासी हजार वर्ष तक राज्य किया। वह राजा स्वयं ही पशुओं का पालन करते थे और खेती करते तथा कभी अनावृष्टि होने के कारण राजा स्वयं ही वर्षा करके मेघों का कार्य भी सम्पन्न करते थे। एकछत्र सम्राट कार्तिवीर्य ने नागों की माहिष्मती नगरी में एक हजार नागों सहित कर्कोटक नाग को पराजित किया था और उस जगह अपना नगर बसाया। कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले राजा ने खेल ही खेल में समुद्र के वेग को रोक कर असमय में ही वर्षा काल जैसा समय कर दिया था। जल क्रीड़ा करते हुये उसके गले से सोने की माला नर्वदा नदी में टूट कर गिर गई। राजा ने अपने तप व बाहुबल से नदी का वेग रोक दिया तथा नर्वदा नदी को सुखा डाला और उसके जल को इतना तप्त कर दिया कि समुद्र में जीव जन्तु जो जल में रहते थे, अकुलाने लगे और राजा से प्रार्थना करने लगे। नदी के सूखने पर राजा ने माला प्राप्त करली।

एक बार सहस्रबाहु अर्जुन ने नर्वदा के सहारे सहारे चलकर समुद्र को प्राप्त करके उसे हजार बाहुओं से आलोडित कर दिया और तटवर्ती वन प्रान्त को जल से डुबो दिया। इस प्रकार उस वन में बिना ऋतु के ही वर्षा ऋतु आ गई। सहस्रबाहु से आलोडित होने पर महा समुद्र विक्षुप्त हो गया और पाताल लोक के बहुत से राक्षस बेहोश हो गये और कितने ही डर के कारण छिप गये। उसकी हजार भुजाओं से समुद्र की तरंगें चूर चूर हो गईं। बड़े बड़े नाग व मत्स्य उसमें विलीन हो गये। समुद्र के जल में फैन उभर आये। समुद्र में भीषण तरंगें उठने लगीं। महाराज कार्तवीर्यार्जुन ने समुद्र को विक्षुब्धा कर दिया जैसे क्षीर सागर को देव–दानवों ने मिलकर विक्षुब्ध किया था।

उस भीमकाय राजा को समुद्र में विराजमान देखकर जल जन्तुओं को मदिराचल की आशंका हुई। वे बहुत ही भयभीत हुये। समुद्र में रहने वाले विषधर सर्प उस महावीर अर्जुन को देखकर विनम्र और सीधे स्वभाव वाले बन गये जैसे सायंकाल में हवा रुक जाने पर केले के वृक्ष खड़े रहते हैं। लंका में जाकर अर्जुन ने अपने कठोर धनुष से पांच सौ बाण छोड़कर सेना सहित रावण को मोह लिया था। इस प्रकार रावण को हराकर अपनी राजधानी माहिष्मती में लाकर उसको कैद में डाल दिया। महर्षि पुलस्त्य के बहुत कुछ कहने पर उसने रावण को छोड़ा। महावीर्य कार्तवीर्यार्जुन के धनुष की टंकार बिजली गिरने के समान थी। इतना होने पर भी बलवलशाली राजा कार्तवीर्य को जमदग्नि पुत्र परशुराम ने युद्ध भूमि में हेमताल के वन की भांति काट गिराया। एकबार आदित्य देव ने तृष्णा से व्याकुल होकर अर्जुन से भिक्षा मांगी थी, राजा ने सूर्य को सातद्वीपों सहित समस्त पृथ्वी का दान कर दिया। राजा के बाणों में स्थित होकर सूर्यदेव ने समस्त पृथ्वी, पुरों, ग्रामों पशुशालाओं को भस्म कर दिया। उस नरपति कार्तवीर्य के प्रभाव से सूर्यदेव ने पृथ्वी के सभी पर्वतों व वनों को जला दिया। राजा

कार्तवीर्य की सहायता से सूर्य ने पृथ्वी को जलाते समय वरुण के एक पुत्र का शून्य आश्रम भी जला दिया था। वरुण ने इस परम तेजस्वी गुण वाले पुत्र को प्राचीनकाल में प्राप्त किया था। वही पुत्र मुनिवर वशिष्ठ और 'आपव' के नाम से प्रसिद्ध हुये अपने आश्रम को नष्ट हुआ देखकर मुनिवर वशिष्ठ जी ने क्रोधित होकर राजा अर्जुन को शाप दिया कि "हैहय राजा ! तुमने मेरे आश्रम को नष्ट कर दिया तो तुम्हारे इस दुष्कर्म कर्म को कुन्ती पुत्र अर्जुन नष्ट करेगा। वह राजा भी न होगा। हे अर्जुन ! तुम्हारे इन भुजाओं को परशुराम काट डालेंगे। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तपस्वी परशुराम जी तुम्हारा संहार करेंगे।"

मुनिवर वशिष्ठ के शाप के कारण परशुराम जी उस सहस्रबाहु अर्जुन की मृत्यु के कारण बने। प्राचीनकाल में राजा को इस प्रकार का वरदान भी मिला था कि उसकी मृत्यु उससे अधिक बलशाली के द्वारा ही होगी। राजा कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र थे जिनमें शूर, सूरसेन, वृष्काद्य, वृष, जमध्वज नामक पांच महा योद्धा थे। ये सभी पुत्र बाण चलाने में प्रवीण, बलवान, ऐश्वर्यशाली थे। इनकी राजधानी अवन्ति नगरी थी जयध्वज के तालजघ नाम का प्रतापी पुत्र पदा हुआ। तालजंघ के सौ पुत्र 'तालजंघ गण' के नाम से प्रसिद्ध हुये। पराक्रमशाली उस हैहय वंश में उत्पन्न होने वालों के पांच गण प्रसिद्ध हैं उनके नाम इस प्रकार हैं–वीरहोत्रगण, भोजगण, आवर्तिगण, तुण्डिकेरिगण तथा तालजंघगण थे।

वीरहोत्र के अनन्त नाम का पुत्र हुआ। अनन्त के दुर्जय, दुर्जय के अमित्रदर्शन, नामक पुत्र हुआ। राजा कार्तवीर्यार्जुन के राज में लोगों का धन चोर नहीं हरण करते थे। वे अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से समस्त प्रजा का पालन करता था। जो मनुष्य इस लोक में परम विद्वान राजा कार्तवीर्यार्जुन के जन्म के वर्णन का पाठ करता या सुनता है उसकी सम्पत्ति नष्ट नहीं होती। वह इस लोक में धनधान्य से सुखी होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

इति श्रीवायुमहापुराण का कार्तवीर्यार्जुन के जन्म का ९४वां अध्याय समाप्त

पिचानबेवाँ अध्याय

(ज्यामघ का वृत्तान्त)

ऋषि बोले—हे सूत जी ! महाराज कार्तवीर्य ने आपव (वशिष्ठ) के आश्रम को क्यों जला दिया। वह राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन अपनी प्रजाओं का तो पालन करता था। तो उसने रक्षक होने पर भी उस तपोवन को क्योंजलादिया। कृपयाइसविषय मेंहमें विस्तार से बतलावें।

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो ! आदित्य ब्राह्मणों का रूप बनाकर राजा कार्तवीर्य के पास आये और कहने लगे—हे राजन् ! मैं भूखा हूं मुझे अन्न आदि दीजिए मैं सन्तोष प्राप्त करने के लिए ही आपके पास आया हूं। मैं आदित्य हूं इसमें कोई सन्देह नहीं करना।

राजा बोला—हे भगवन् दिवाकर ! आपको किस प्रकार का भोजन कराऊँ जिससे आपकी सन्तुष्टि हो सके। आपके द्वारा बताये जाने पर वैसा ही प्रबन्ध कर दूँगा।

सूर्य बोले—हे राजन् ! मुझे यह समस्त स्थावर जगत का दान कर दो। उसी का भोजन करके मैं सन्तुष्ट होऊँगा। अन्य भोजन से मैं तृप्त नहीं हो पाऊँगा।

राजा बोले—हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ ! मैं मानव हूँ अतः अपने मानव तेज से समस्त स्थावर जगत को नहीं जला पाऊँगा। अतः आपको प्रणाम है।

आदित्य ने कहा—'हे राजन् ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मैं तुम्हें ऐसे बाण दे रहा हूँ जो कभी नष्ट न होकर तुम्हें सदा सुख प्रदान करेंगे। मेरे तेज को मिलाकर ये बाण फेंके जाने पर जलने लगेंगे हे नृपति ! यह मेरे तेज के कारण मेघ और समुद्र को भी जला देंगे। इसके द्वारा सब पदार्थ सूख जायेंगे और मै उन्हें खालूँगा। तभी मेरी असली तृप्ति होगी।'

ऐसा कहकर आदित्य देव ने राजा कार्तिवीर्य को बाण प्रदान कर दिए। उन बाणों से अर्जुन ने समस्त स्थावर पदार्थों को जो

'समस्त विशाल भूमण्डल में थे, तथा ग्राम, आश्रम, गोष्ठनगर तपोवन, सुन्दरवन उपवन, सबको भस्म कर दिया और तदनन्तर सूर्य की परिक्रमा की। सूर्य के तेज से समस्त पृथ्वी तृणों और वृक्षों से रहित होकर भस्म होगई। इसी समय महर्षि आपव एक व्रत करके दस हजार वर्षों तक जल में निवास कर रहे थे वे महान तेजस्वी तपोधन आपव अपने व्रत को समाप्त करके उठे तो उन्होंने अपना आश्रम राजा अर्जुन के द्वारा भस्म हुआ देखा। उसी समय उन्होंने कार्तिवीर्य को शाप दे दिया।

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! इसी प्रसंग में राजा क्रोष्टु के वश का विवरण किया जाता है सो सुनिए। इस वंश में ही वृष्टि वंश के प्रवर्तक वृष्णि का भी जन्म हुआ था। क्रोष्टु के पुत्र केवल वृजनीवान्थेइस के पुत्र स्वाहा जो स्वाहा (यज्ञ) करने वालो में श्रेष्ठ थे, सभी लोग उन्हें बहुत चाहते हैं। स्वाहा के पुत्र राजा रुशादु दानियों में अग्रगण्य थे। रुशादु के बड़े पुत्र प्रसूत प्रजा के बहुत प्रिय थे। उन्होंने महान यज्ञों को किया था। जिसमें बहुत सी दक्षिणायें दी गई थीं उसका पुत्र चित्ररथ हुआ। जो विचित्र ढंग से पैदा हुआ था। चित्ररथ ने भी बहुत से दक्षिणावाले यज्ञ किये थे। इसके बाद राजा शशबिन्दु राज्य का अधिकारी हुआ। यह महा बलवान, पराक्रमी और अनेक पुत्रों वाला चक्रवर्ती राजा था। उसके विषय में लोग अनेक श्लोकों का गान करते हैं जो पुराने राजाओं की कथा में गाया करते हैं। उन श्लोको के भावनिम्न प्रकार हैं।

राजा शशबिन्दु के सौ महान बलवान पुत्र थे जिनमें छै सब से प्रमुख तथा महा प्रतापशाली थे। इनको प्रथुगण कहते हैं। इनके नाम पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, प्रथुश्रजयऔर प्रथुदाता थे सभी पुराण प्रथुश्रवा के पुत्र अन्तर की बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह अन्तर प्राचीन काल में यज्ञ का पुत्र था। इसी धर्मात्मा ने 'उशना' नाम से भी पृथ्वी को प्राप्त किया था। उशना ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसका पुत्र राज्यर्षियों से सम्मानित मरुत हुआ। मरुत का पुत्र बीर कम्बलवर्हि हुआ। उसका पुत्र परम

विद्वान रुक्म कवच था। प्राचीनकाल में इस राजा ने धनुष बाण, कवच धारण करने वाले श्रेष्ठ राजाओं को हराकर श्रेष्ठ राज्य लक्ष्मी प्राप्त की और अश्वमेध यज्ञों में ब्राह्मणों को बहुत सा धन दक्षिणा में दिया था। इसके पाँच बलशाली शत्रुदमन पुत्र हुये। जिनके नाम हैं–रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि। राजा ने अपने पुत्र परिघ और हरि को विदेह देश का राजा नियुक्त किया। रुक्मेषु अपने पिता के राज्य के उत्तराधिकारी हुये। पृथुरुक्म उसमें अधीन था। उन सभी भाइयों ने मिलकर ज्यामघ को निर्वासित कर दिया उसने जंगल में अपना आश्रम बना लिया था। वन में मुनिवेषधारी ज्यामघ ने एक ब्राह्मण के कहने पर रथ पर चढ़कर मध्य देश को चल दिया। वह नर्वदा के किनारे ऋक्षवान नामक पर्वत पर पहुँचा। वहां से शुक्तिभक्तो में प्रविष्ट हुआ। ज्यामघ की पत्नि शैव्या परम शक्ति मती थी। उसके कोई पुत्र नहीं था परन्तु फिर भी उसने दूसरी शादी नहीं की थी। एक विजय में राजा को एक कन्या मिली। उसे लाकर उन्हो ने शैव्या को दिया और कहा–कि यह तुम्हारी पुत्र वधू है। तुम्हारे जो पुत्र होगा यह उसी की बधु बनेगी। राजा के ऐसा कहने पर शैव्या ने कठोर तपस्या की। और फल स्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार साध्वी शैव्या ने अपना पुत्र वृद्धावस्था में प्राप्त किया जिसका नाम विदर्भ था। उसकी पुत्रवधू में विदर्भ के द्वारा क्रथ और कौशिक नामक दो पुत्र हुये। इसके बाद विदर्भ के एक तीसरा लोमपाद नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। लोमपाद के वस्तु नामक पुत्र हुआ। वस्तु के आहति नाम का पुत्र हुआ। को शक के पुत्र चिदि नाम के पुत्र हुये। चिदि के राजा चैद्य नामक पुत्र हुआ। विदर्भ राजा क्रथ के कुन्ति नामक पुत्र हुआ। कुन्ति के धृष्ट सुत नामक परम प्रतापी पुत्र हुआ। धृष्ट के निर्वृत्ति नामक पुत्र हुआ। निवृत्ति के महा बलवान दशार्ह नामक पुत्र हुआ। दशार्ह के पुत्र व्योमा हुये। व्योमा के जीभूत नामक पुत्र हुये। जीभूत के विकृर्त नामक पुत्र हुये। विकृति के भीमरथ हुये। भीमरथ

के सत्य वचन बोलने वाले शीलवान और दानी राजा 'रथवर' उत्पन्न हुये। राजा 'रथवर' के नवरथ नामक पुत्र हुये। नवरथ के 'दशरथ' हुये राजा दशरथ के एकादशरथ नामक पुत्र हुये। एकादशरथ के शकुनि हुये शकुनि के धनुषधारी राजा करम्भ पुत्र रूप में पैदा हुये। राजा करम्भ के देवरात नाम के पुत्र हुये। देवरात के महान यशस्वी 'देवक्षत्र' हुये। देवक्षत्र के देवन नामक पुत्र हुये। देवन के मधु नाम के पुत्र हुये। मधु के मेधार्थी सम्भव नामक पुत्र हुआ। मधु के चार पुत्र मनु, मनुवंश, नन्दन और महान-पुरुवश नाम के पुत्र पैदा हुये। पुरवश के 'पुरुद्वान' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरुद्वान के पुरुद्रह उसको भद्रवती नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ। उसकी स्त्री इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुई थी उसमें उसे 'सत्व' नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। सत्व से कीर्तिशाली 'सात्वत नाम का पुत्र पैदा हुआ।

जो मनुष्य महात्मा ज्यामघ के वंश के इस कथा को पढ़ता और सुनता है वह सन्तानवान होकर राजा चन्द्रमा के लोक को प्राप्त करता है। इति श्री वायु महापुराण का ज्यामघ वृत्तान्त नामक पिचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥

छियानवेवाँ अध्याय

[विष्णु वश का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषियो! सात्वतराजा की रूपवती स्त्री कौशल्या ने भजिन, भजवान, राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज तथा यदुनन्दु वृष्णि इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया इन सबों के चार वंशों का वर्णन सुनिये राजा भजमान ने अपनी श्रञ्जयी नाम की स्त्री वाह्यक और उपरिवाह्य नाम के दो पुत्र पैदा किये। तथा श्रञ्जय के दो कन्याऐं थीं, जिनका विवाह वाह्यक के साथ हुआ था उन राजा वाह्यक ने उन दोनों स्त्रियों से बहुत से पुत्र पदा किये, इन बहुत पुत्रों में निमि पणव और

वृष्णि मुख्य माने जाते थे। भजमान के पुत्र वाह्यक ने अपनी बड़ी रानी से इन पुत्रों को पैदा किया था, इसके बाद इसी प्रकार छोटी रानी से अयुतायुत-जित्, सहस्रजित शतजित और वायक नाम के पुत्रों को पैदा किया। इन सबों में राजा देवावृध ने कठिन तपस्या की थी, उन्होंने सर्वगुण सम्पन्न पुत्र की कामना से ही इतनी कठोर तपस्या की। इसप्रकार तपस्या करते समय राजा ने अपने योगबल से पणीशा नदी के जल का स्पर्श किया। नदी के जल का स्पर्श करते ही नदी ने राजा के वरदान की चिन्ता की, और सोचने लगी कि ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है जिससे राजा सर्वगुण सम्पन्न पुत्र पैदा कर सके। अतः नदी ने सोचा कि मैं ही राजा को स्त्री रूप में ग्रहण करूँगी जिस प्रकार राजा ने भावना की थी, उसी भावना के अनुसार नदी से स्वयं ही उसके हाथ प्रकट हुये, फिर सावित्री कुमारी होकर राजा स्त्री रूप में हो गई, तब राजा देवावृध ने उसकी इच्छा पूर्ण करते हुये उस कुमारी में एक तेस्वसी पुत्र को गर्भाधान किया। सभी नदियों में श्रेष्ठ पर्णाशा नदी ने राजा की रानी बनकर नवें मास में सर्वगुण सम्पन्न एक पुत्र को पैदा किया। विद्वान मनुष्य राजा के गुणों और वंशों का वर्णन करते हुये कहते हैं। राजा देवावृध सभी प्रकार से गुण शाली था। वभु अपने सभी समाज में श्रेष्ठ थे। इस वंश के पैंसठ हजार सत्तर मनुष्यों को अमृत प्राप्त हुआ था। वभु का ऐश्वर्य देवावृध से भी बढ़ा हुआ था। उसके वंश में भोज वंशीय और आर्तिकावलों की उत्पत्ति हुई थी। गान्धारी और माद्री ये दोनों वृष्णिवंश की स्त्रियां थीं। इनमें से गान्धारी ने सुमित्र, मित्रनन्दन और माद्री ने युधाजित्, देवभीढुष और अनमित्र नाम केपुत्र पैदा किये। अनमित्र का निघ्न नाम का पुत्र हुआ था। निघ्न के प्रसेनजित् और शक्रजित् नाम के पुत्र पैदा हुये। शक्रजित् के सूर्यदेव परम मित्र थे।

एक बार प्रातःकाल के समय शक्रजित् अपने रथ पर सवार होकर सूर्य की उपासना करने के लिए एक जलाशय के जल का स्पर्श

करने गया । जिस समय वह उपासना कर रहा था। उस समय अस्पष्ट रूप रख कर अपने तेजोमण्डल से समन्वित होकर भगवान सूर्यदेव उनके आगे खड़े हो गये। सूर्यदेव को सामने खड़े हुआ देख कर राजा ने कहा—हे आदित्य ! मैं आपको तेजस्वी आकाश में देखता हूँ वैसे ही अब भी देख रहा हूं। हे भगवन् ! फिर आप बतलाइये आपके मित्र होने की विशेष बात क्या रह । शक्रजित् की यह बात सुनकर सूर्यनारायण ने अपने गले से स्यमन्तक नाम की मणि को उतार कर शक्रजित् को पहना दिया, तब राजा ने सूर्य को शरीर धारण किये हुये देखा, और एक मुहूर्त तक एकटक देखता रहा। फिर उन्हें जाने को तैयार देखकर शक्रजित् ने कहा कि हे भगवन् ! आप अग्नि के समान तेजस्वी हो जिस प्रकाशमान मणि को धारण करके आप समस्त लोकों में घूमते हो उसी मणि को मुझे देने की कृपा करो। राजा की इस याचना पर स्यमन्तक मणि को उसे दे दिया, उस मणिको बाँधकर राजा अपने नगर में आया। लोग उसको सूर्य जानकर उसके पीछे भागने लगे। पुर- और अन्तःपुर के लोगों को विस्मय में डाल कर वह राजा शक्रजित् अपने भाई प्रसेनजित के पास पहुँचा, और बड़े प्रेमपूर्वक उस दिव्य मणि को प्रदान किया। इस स्यमन्तक मणि के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि वह जिस राष्ट्र में रहेगी वहाँ मेघ समय पर वर्षा करेंगे, और व्याधियों का डर नहीं रहेगा गोविन्द के मन में उस मणि को लेने की इच्छा थी किन्तु सामर्थ्यवान होने पर भी उन्होंने प्रसेनजित् से नहीं छीना।

एक बार राजा प्रसेनजित् स्यमन्तक मणि को धारण करके शिकार खेलने के लिये जंगल में गये। उसी स्यमन्तक मणि के कारण एक सिंह ने उनको मारडाला। रीछराज जाम्बवान् ने उससिंह को मार डाला और मणि को लेकर अपनी गुफा में चलेगये। वृष्णि और अन्धक वंशके लोगों ने इस हत्या की शंका भगवान कृष्ण पर की कि स्यमन्तक मणि के लोभ से कृष्ण ने ऐसा किया है। ऐसी शंका सब को होने लगी। यह सुन कर कृष्ण भगवान को लोगों की ऐसी शंका करना सहन नहीं हुआ,

और उस रहस्य का पता लगाने को जगंल को चले गये और जहां प्रसेनजित शिकार खेलने के लिए गये थे, उसी ओर उनके पद चिन्हों को देखते २ आगे बढ़े। वहां विंध्याचल और ऋक्षवान पर्वत पर घूमते २ श्रीकृष्ण ने घोड़े सहित प्रसेनजित को मरा हुआ देखा, परन्तु मणि को नहीं देखा, थोड़ी दूर पर एक सिंह को भी मरा हुआ देखा। वहां पर रीछ के पैरों के निशान से यह साफ मालूम हो रहा था कि सिंह को किसी रीछ ने मारा है। उसी रीछ के पद चिन्हों के द्वारा रीछ की गुफा का पता लगाया। श्रीकृष्ण ने उस विशाल गुफा में स्त्री की आवाज सुनी। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस गुफा में जम्बवान के लड़के को धाय पड़े प्रेम से उस स्यमंतक मणि को दिखलाकर बेटा रोओं मत इस प्रकार कह कर खिला रही थी।

धाय बोली

प्रसेनजित् को सिंह ने मारा, सिंह को जाम्बवान ने मारा हे मेरे सुकुमार बेटे! "तुम रोओ मत क्योंकि यह मणि तुम्हारी है"। धाय की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण ने उस गुफा में शीघ्रता से प्रवेश किया क्योंकि वे गुफा के पास ही प्रसेनजित को मरा हुआ देख चुके थे। गुफा में पहुँच कर भगवान कृष्ण ने रीछ के राजा जाम्बवान को देखा फिर उसी गुफा में ही जाम्बवान और वासदेव का युद्ध आरम्भ हो गया। गोविन्द ने इक्कीस दिनों तक बाहुओं से युद्ध किया। इधर श्रीकृष्ण के साथियों ने श्री कृष्ण के गुफा में पहुँच जाने के बाद बहुत समय होता देखा तो द्वारकापुरी को लौट आये, और श्रीकृष्ण तो मारे गये ऐसी प्रसिद्धी होगई। इसके बाद भगवान वासदेव ने महाबलशाली रीछ राज को परास्त कर दिया, भगवान के तेज से प्रभावित होकर जाम्बवान ने अपनी कन्या जाम्बवती को और स्यमंतक मणि को भगवान कृष्ण को सौंप दिया। इस प्रकार स्यमंतक मणि को प्राप्त कर श्रीकृष्ण ने अपने पुरुषार्थ द्वारा अपना अपयश दूर किया, और स्यमन्तक मणि

को लेजाकर समस्त सात्वत वंशियों के सामने शक्रजित को प्रदान किया। और इसके बाद मधुसूदन भगवान ने अपने घर लाकर जाम्बवती के साथ विवाह किया। भगवान श्रीकृष्ण के ऊपर फैलाई गई इस झूठी अपकीर्ति को दूर करने का वर्णन जो पढ़ता है उसको कभी भी इस प्रकार की अपकीर्ति का पात्र नहीं होना पड़ता है।

शक्रजित् की दस स्त्रियों ने जो सब आपस में सगी बहिन थीं, उन्होंने सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें तीन ही अधिक प्रसिद्ध हुए। सबसे बड़े पुत्र का नाम भृंगकार था अन्य दो पुत्रों का नाम ब्रतपति तथा सुप्रिय अपम्बान्त था। भृंगकार की पत्नि द्वारवती के तीन सर्वगुण सम्पन्न कन्याएँ हुईं। इनमें परम सुन्दरी सत्यभामा परम तपस्विनी थी, पिता ने उनका विवाह कृष्ण के साथ करने की सोची। कृष्ण ने स्यमन्तक मणि जब शक्रजित् को दी थी, तब उस मणि को बभ्रु ने पहन लिया। भोजवंशीय शतधन्वा ने उससे उस मणि को छीन कर अक्रूर को दे दिया। शतधन्वा ने उसके बदले अक्रूर से सत्यभामा की प्राप्ति के लिये सहायता की। अक्रूर ने मणि लेते समय उससे प्रतिज्ञा करालो कि इस षड़यत्र का किसी को पता न लगे। कृष्ण जब तुमको पीड़ित करेंगे, तो हम सब तुम्हारी सहायता करेंगे, क्योंकि द्वारकापुरी के सभी लोग हमारे वंश में हैं। रात्रि के समय सोते हुये भृंगकार को शतधन्वा ने मार डाला। पिता के मारे जाने पर सत्यभामा बहुत दुखी हुई और रथ पर चढ़ कर वारणावत गई। वारणावत में पाण्डवों के जलजाने पर श्रीकृष्ण द्वारका आये और अपने भाई हलधर जी से सभी बातें कीं, और बोले हे सर्वशक्तिमान! जिस मणि के लिये सिह ने प्रसेनजित् को मारा था उसी के कारण शतधन्वा ने शत्रजित् को मार दिया। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप शतधन्वा का वध करदें। महा बलवान भोज का संहार करने के बाद ही हमको स्यमन्तक मणि मिल सकेगी।

इस प्रकार विचार करने के बाद श्रीकृष्ण और शतधन्वा में महान युद्ध छिड़ गया। पूर्व में हुई प्रतिज्ञा के अनुसार शतधन्वा ने लड़ाई के मैदान में अक्रूर को देखना चाहा, परन्तु दसों दिशाओं में देखने पर भी अक्रूर का कहीं पता न लगा। हृदय से मित्र और सहायता में समर्थ होते हुए भी अक्रूर शतधन्वा की सहायता के लिये नहीं आये, इससे शतधन्वा बहुत घबड़ाया, और अपनी विज्ञा हृदया नाम की घोड़ी पर सवार होकर युद्ध भूमि से भाग निकला। उस घोड़ी के वेग को सौ योजन देखकर श्री कृष्ण ने शतधन्वा का पीछा किया। हे ब्राह्मणो! अत्यन्त परिश्रम के कारण पसीना से तर होकर उस घोड़ी के प्राण निकल गये इसके बाद श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा कि आप यहीं ठहरिये। देखो वह घोड़ी तो मर गई। मणि को मैं पैदल ही शतधन्वा से छीन कर लेआता हूँ ऐसा कह कर भगवान अच्युत ने पैदल दौड़कर मिथिला के राजा शतधन्वा को मार डाला। किन्तु उसके मार देने के बाद भी मणि उसके पास न मिली। शतधन्वा को मार कर जब भगवान कृष्ण लौटे तो बलरामजी ने उनसे स्यमंतकमणि माँगी, तो श्री कृष्ण ने कहा कि उस पर मणि नहीं मिली, इस प्रकार बलरामजी भगवान कृष्ण पर बहुत क्रोधित हुऐ और उन्होंने कृष्ण को बहुत धिक्कारा और कृष्ण से कहा कि भाई के नाते में तुमको छोड़े देता हूँ, जाओ तुम्हारा कल्याण हो, मै भी जा रहा हूं, और मेरा द्वारकापुरी से और तुम से कोई सम्बन्ध नहीं है और न वृष्णिवंशियों से ही कोई सम्बन्ध है। इसप्रकार कह कर बलरामजी मिथिलापुरी को चल दिये मिथिलापुरी में जाकर उनका बहुत स्वागत हुआ, वहां पुरुवासियों ने उन्हें अनेक उपहार प्रदान किये। गाधि के पुत्र ने उस स्यमंतक मणि के लिए और अपनी रक्षा के लिए एक दीक्षामय कवच पहन रखा था। साठ वर्ष के समय में उसने अनेक यज्ञ किये, उस विद्वान के ये यज्ञ अक्रूर यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुए। उसमें बहुत सा अन्न और दक्षिणा के रूप में

बहुत सा धन खर्च हुआ। इसी बीच में दुर्योधन ने मिथिपुरी में पहुँच कर बलरामजी से गदा चलाने की शिक्षा ग्रहण की। इसके बहुत समय बाद भगवान कृष्ण और वृष्णि तथा अन्धक वंशों के लोगों ने बड़ी प्रार्थाना करके बलरामजी को प्रसन्न किया, और उन्हें द्वारकापुरी चलने के लिये वाध्य किया। अक्रूर भी युद्ध में वन्धुमान के साथ शत्रुघ्न को संहार करके अन्धकों के साथ द्वारका से बाहर चले गये थे। ये दोनों महा बलवान पुत्र भंगकार के ही थे। स्वफल्क की पुत्री नय इन दोनों की माता थी। अन्धकों के स्वामी भृंगकार के ये दोनों पुत्र (शत्रुघ्न और वन्धुमान) बहुत बलवान थे। भृंगकार की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण अक्रूर से प्रसन्न नहीं थे। इस प्रकार जाति के हट से और समाज से अपमानित होकर अक्रूर द्वारकापुरी से बाहर चले गये। उनके चले जाने पर राज्य में अनावृष्टि के कारण संकट आगया लोग एक दूसरे को मारने काटने लगे। इस दुर्घटना से दुखी होकर कुकुट और अन्धकों ने अक्रूर को परम प्रसन्न किया अक्रूर के द्वारका लौटने पर इन्द्र ने बहुत जोर की वर्षा की। अक्रूर ने श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये सर्वगुण सम्पन्न शीलवती नाम की अपपी बहिन को प्रदान किया। भगवान वासदेव ने योगवल से यह जान लिया कि स्यमन्तक मणि इन के ही पास है, और भरी सभा में यह घोषणा की कि हे अक्रूर जी! आप के पास जो सर्व श्रेष्ठ स्यमन्तक मणि है उसे हमें प्रदान कर दीजिये। साठ वर्ष से उसी के कारण आपके ऊपर हमारा क्रोध है। कृष्ण के इस प्रकार बचन सुनकर विद्वान अक्रूरजी ने उस भरी सभा में भगवान वासदेव को वह मणि लाकर देदी। भगवान वासदेव ने उस मणि को लेकर परम प्रसन्न होकर पुनः वहमणि अक्रूर को वापिस करदी। अक्रूर ने मणि को कृष्ण के हाथ से प्राप्तकरके यथा स्थान धारण कर लिया। वे सूर्य के समान उस समय शोभा पाने लगे। भगवान के ऊपर लगाये गये ऐसेइस झूठे अपवाद को जो मनुष्य जानता है वह कभी भी ऐसे अपमान का भाजन नहीं बनता।

छोटे बृष्णिनन्दन अनमित्र से शिनि का जन्म हुआ। उनके पुत्र सत्य परायण सत्यक हुये। सत्यक के पुत्र सात्यिकि हुए। उनका दूसरा नाम ययुधान भी था सात्यिकि के पुत्र भूति हुये। भूति के युगन्धर हुये। इन सभी भौत्य कहलाने वाले बृष्णियों का वर्णन मैं कर चुका।

माद्री के पुत्र युधाजित के प्रश्नि नामक पुत्र हुये। प्रश्नि के स्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुये। महाराज स्वफल्क परम धर्मात्माराजा थे। वे जहाँ रहते थे वहां पर व्याधियों तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था। हे ब्राह्मणो! एक बार काशीराज के धार्मिकराज में इन्द्र ने वर्षा नहीं की। काशिराज ने अपने यहां महाराज स्वफल्क को बुलाया। स्वफल्क के वहाँ वास करने पर इन्द्र ने वहां वर्षा की। स्वफल्क ने काशीराज की परम सुन्दरी कन्या गान्दिनी के साथ अपनी शादी की। गान्दिनी प्रतिदिन सौ गायें ब्राह्मणों को दान करती थी। कहा जाता है कि यह गान्दिनी अपनी माता के उदर में बहुत से वर्षों तक रही। गर्भ में ही उसने पिता से कहा था हे गर्भस्थ सन्तान! तुम शीघ्र उत्पन्न हो तुम्हारा कल्याण हो। तुम गर्भ में ही क्यों निवास कर रही हो। राजा की बातें सुनकर गर्भ कन्या ने उत्तर दिया–पिता जी! आप प्रतिदिन गौओं का दान करें तब मैं उत्पन्न हूँगी। "बहुत अच्छा' ऐसा पिता ने कहा इसके बाद कन्या की मनोकामना पूर्ण की गई। उसी गान्दिनी के स्वफल्क के सयोग से परमदानी, यज्ञकर्त्ता, शूरवीर, वेदज्ञ, अथिति सेवक अक्रूर का जन्म हुआ'। राजा स्वफल्क भी परम दानी थे। स्वफल्क के अक्रूर के अतिरिक्त भी अन्यपुत्र थे इनके नाम हैं–उपमंगु मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिरज्ञ, यज्ञ, शत्रुघ्न अथवा अरिमर्दन, धर्मभृत, शृष्टचय, वर्गमोच, आवाह तथा प्रतिवाह। इसके अतिरिक्त परमसुन्दरी वसुदेवा नाम की एक कन्या भी थी अक्रूर की पत्नि का नाम उग्रसेनी था उससे दो पुत्र देव एवं अनुपमदेव उत्पन्न हुये जो परिवार को अति आनन्द प्रदान करने वाले थे। तथा देवताओं

के समान गुण वाले थे। चित्रक के पुत्र थे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुवर्मा, चर्मभृत, बर्मभृत, अभूमि और बहुभूमि। श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो स्त्रियाँ भी थीं। काशिराज की कन्या ने सत्यक के संयोग से कुकुद, भगमान शभी, कम्बलवहिष् नामक चार पुत्रों को पैदा किया। कुकुद के पुत्र वृष्टि थे वृष्टि के पुत्र का नाम 'कपोतरोमा' था। कपोतरोमा का पुत्र रेवत था। रेवत का पुत्र तुम्बरुसखा था जो परम विद्वान था। इसके दूसरे नाम चन्दनोदक दुँदभि भी थे। उनका पुत्र 'अभिजित' नाम वाला हुआ। अभिजित के पुनर्वसु हुए। यह अश्वमेधयज्ञ की वेदी से प्रकट हुआ था। पुनर्वसु विद्वान, हवन कर्त्ता थे। उनके जुड़वां सन्तानें हुईं। इनके नाम आहुक आहुकी थे जो शस्त्रबल तथा बाहुबल आदि से कभी भी पराजित नहीं हो सकते थे। ये दोनों महाबुद्धिमान थे। उनके बारे में कुछ श्लोक इस प्रकार हैं— ये महाराज आहुक मेघ के समान घोर आवाज करने वाले थे। ये राजा समस्त रण सामग्री से सजधज कर ध्वजा और कवचों से सुरक्षित, दस हजार रथों से तथा सुन्दर किशोर अवस्था वाले दस हजार अस्त्री अश्वों के साथ युद्ध में आक्रमण करते थे। उसके वंशों में इसप्रकार का कोई भी राजा नहीं हुआ। वहां के राजा सत्य बोलने वाले, यज्ञादि का अनुष्ठान करने वाले थे तथा सभी राजा एक हजार से अधिक धन का दान करने वाले थे। उसके राज्य में सभी प्रकार के सुख थे। राजा आहुक के धतृ नाम के पुत्र हुए। राजा भोजराज के समान राजा आहुक ने भी पूर्व दिशा में सुवर्ण और चांदी के आभूषणों से सुसज्जित इक्कीस हजार हाथियों की बलवान सेना को लेकर राजा भोज के ऊपर हमला किया था और उसी प्रकार उत्तर दिश में भी इतनी सेना लेकर राजा भोज पर चढ़ाई की थी। यह बात प्रसिद्ध है कि युद्ध में उसके पैरु पैरों के घुघुरू बज उठे थे। राजा आहुक ने अपनी बहिन आहुकि का विवाह राजा आहुकान्ध के साथ किया था। आहुकान्ध के सयोग से

उसके दो पुत्र पदा हुये । उनके देवक और उग्रसेन नाम थे। ये दोनों पुत्र देवताओं के समान सुन्दर प्रभाव शाली थे। राजा देवक के तीन बहुत सुन्दर शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए इनके नाम देवदेव, सुदेव, और देवरक्षिता थे। राजा देवक के सात कन्याऐं भी थीं, उनके नाम भी इसप्रकार हैं। बृकदेवा, उपदेवा, देव रसिता, श्रीदेवा, शान्ति देवा, महादेवी तथा देवकी थीं। इन सब में देवकी जी बहुत सुन्दर थीं। इन सातों बहिनों का विवाह राजा वसुदेवजी के साथ हुआ था। राजा उग्रसेन के नौ पुत्र थे, उनके नाम इस प्रकार हैं। न्यगोध, सुनामा, कङ्कशंकु, भूमय, सुतनु राष्ट्रपाल, युद्धातुष्ट पुष्टिमान और कंस थे। इन सब में कंस सबसे बड़ा था। इन नवों भाइयों की पांच बहिनें थीं जिनके नाम कर्म्मवती, धर्मवती, शंतांकु राष्ट्रपाला और सुन्दरी कन्या थीं। राजा उग्रसेन कुक्कुर वंश के प्रसिद्ध राजा थे। जो मनुष्य इन कुक्कुर वशों के वर्णन को सुनता है वह अपने विपुल वंश का पालक होकर उत्तम सन्तान वाला होता है।

राजा भजमान् के श्रेष्ठ रथारोही राजा विदूरथ पैदा हुये, उन राजा विदूरथ के शूर और विदुर नाम के पुत्र पैदा हुये। इन में शूर के आठ महा बलशाली पुत्र पैदा हुये; इनके नाम ये हैं—वात, निवात, शोणित, शतिवाहन, शमी, गदवर्मा, निदात, और शत्रुजित् थे। शमि के प्रतिक्षित्र नाम के पुत्र पैदा हुये। स्वयम्भोज के हृदिक नाम के पुत्र पैदा हुये। हृदिक के दस बहुत भयानक पुत्र पैदा हुये, उनमें सबसे बड़े पुत्र का नामकृतवर्मा था-दूसरे का नाम शतधन्वा था, देवाई, भिषक्, द्वैतरथ, सुदान्त, धियान्त नकवान् और कनकोद्भव था। देवाई के कम्बल, वर्हिष नाम के पुत्र पैदा हुये। और कम्बल वर्हिष राजा के असमौजा सुसमौजा नाम के दो पुत्र हुये। सुसमौजा के कोई पुत्र नहीं हुआ भगवान कृष्णने उसे सुदंष्ट्र और सुरूप नाम के दो पुत्र दिये। जो मनुष्य अन्धक वंश के वर्णन को नित्य प्रति ध्यान सुनता है वह इस लोक में सुख पाकर परलोकमें सुख पाता है।

राजा शूर ने अस्मकी से देवमीदुष नाम के पुत्र को पैदा किया माषी में देवमाहुष नाम के पुत्र पैदा हुये। भोज की कन्या भाषी ने राजा शूर के संयोग से दस श्रेष्ठ पुरुषों को पैदा किया। इनमें वसुदेवजी सबसे अधिक बलशाली थे। ये पूर्व काल में आनकदुन्दुभि नाम से प्रसिद्ध थे। राजा वसुदेव जिस समय पैदा हुये थे, उस समय आकाश में अति सुन्दर गम्भीर ध्वनि तथा फूलों की वर्षा होने लगी। सम्पूर्ण मृत्यलोक में राजा वसुदेव के समान कोई सुन्दर रूप वाला न था। उस परम तेजस्वी राजा वसुदेव की कीर्ति चन्द्रमा के समान लोक मनोरञ्जनी तथा विशद थी। बसुदेव के बाद शूर के देवभाग नाम के पुत्र पैदा हुये। उनके बाद देवश्रवाः नाम के पुत्र पैदा हुये। इनके अलावा अनाद्दष्टि, कड़ नन्दन, भृञ्जिन, श्याम शविक और गण्डूष नाम के पुत्र थे। इनके चार सुन्दर कन्याऐं भी थीं, इन कन्याओं के नाम पृथा, श्रुतवेदा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा नाम थे। इनके राजाधि देवीं नाम पाँचवीं कन्या और थी। कुन्ति ने पृथा को अपनी कन्या रूप में देखा, और उसका विवाह राजा पाण्डु ने किया था। निःसन्तान राजा कुन्ति भोज को पिता ने पृथा को देदिया था। कुन्ति भोज की पोषित पुत्री होने के कारण वह कुन्ति नाम से प्रसिद्ध हुई। कुरु वश के राजा पाण्डु ने कुन्ति के साथ विवाह किया। पृथा ने पाण्डु के संयोग से अग्नि के समान परम तेजस्वी तीन पुत्रों को पैदा किया उन तीनों पुत्रों की समानता में पृथ्वी पर दूसरा कोई राजा न था। वे इन्द्र के समान पराक्रम शाली और वीर थे। पृथा ने धर्म के अंश से युधिष्ठिर को पैदा किया और मारुत के अंश के भीम नाम का पुत्र पैदा किया। तीसरा इन्द्र के अंश से अर्जुन नाम का पुत्र पैदा किया। अश्विनी कुमार के अंश से माद्री ने नकुल और सहदेव को पैदा किया पैदा होते ही यह दोनों पुत्र महा तेजस्वी और पराक्रमी प्रतीत होते थे तथा इनके नेत्रों से ऐश्वर्य की परम आभा की ज्योति प्रज्वलित दर्शती थी जिस समय यह पैदा हुये थे उस समय बड़े बड़े देवज्ञों व ऋषियों ने शुभाशीर्वाद दिया था।

ये दोनों परम बलवान और सुन्दर थे। बृद्ध शर्मा ने श्रुतिदेवी स्त्री के संयोग से दन्तवक्र नाम के महाबलशाली पुत्र को पैदा किया यह दन्तवक्र करुषदेश का स्वामी था। कैकयदेश की राजपुत्री श्रुत-कीर्ति ने सन्तर्दन नाम के पुत्र को पैदा किया। उसने भीचेकितान और बृहत्क्षत्र नाम के दो पुत्रों को पैदा किया। अवन्ति नगरी के राजा विन्दु और अनुबिन्दु ये दोनों भाई भी उन्हीं के पुत्र थे। श्रुतश्रवा ने राजा शिशुपाल को पैदा किया। यह चेदि देश का राजा था। दमघोष को पत्र था राजा शिशुपाल। वह पूर्व जन्म में दशग्रीव रावण के रूप में पैदा हुआ था। इनके भाई पटुश्रवा और बहिन रुजकन्या थी। राजा वसुदेव के तेरह सुन्दर रानी थीं। उन रानियों के इस प्रकार नाम थे। पौरवी, रोहिणी, अपरा, मदिरा, भद्रा, वैशाखी और देवकी ये सात पटरानी थीं। सुगन्धि और वनराजी ये दो परिचारिकायें थीं। रोहिणी और पौरवी ये दोनों बाल्हीक की कन्या थीं। सबसे बड़ी रानी रोहिणी वसुदेव जी की परम प्रिया थीं। उनके संयोग से सबसे बड़े पुत्र बलराम जी तथा अन्य पुत्र सारण, निशठ, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक, कुशीतक नाम के आठ पुत्र और चित्रा नाम की एक कन्या को पैदा किया। बलराम जी के निशित और उत्सुक नाम के दो पुत्र पैदा हुए। जो वसुदेव जी के पौत्र थे बलराम जी के अन्य पुत्र भी थे। पार्श्वी, पार्श्वनन्दी, शिशु सत्यधृति, मन्दवाह्य, रामाण, गिरिक, गिरि, शुल्कगुल्म, गुल्म दरिद्रान्तक नाम के थे। इनके पांच बहिनें थीं। अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा और शतवला थीं। ये पांचों पुत्रियां सारण की थीं। भद्रारक, भद्रगुप्ति, भद्रविद्य, भद्रबाहु, भद्रत्थ, भद्रकल्प, सुपार्श्वक, कीर्तिमान, रोहिताश्व, भद्रज, दुर्मद और अभिभूत ये रोहिणी के पुत्र पौत्रादिकों के नाम हैं। मदिरा के नन्द, उपनन्द, मित्र, कुक्षिमित्र चल, पुष्टि और सुदेव नाम के पुत्र तथा चित्रा और उपचित्रा नाम की दो कन्याएं थीं। भद्रा के चार पुत्र उपबिम्ब, बिम्ब, सत्वदन्त और महोजा थे। वसुदेवजी नेकौशिकी नाम के पुत्र को पौशखि स्त्री

से पैदा किया। वसुदेव जी ने देवकी के गर्भ से छः पुत्र सुषेण, कीर्तिमान, तदय, भद्रसेन, यजुदाय और भद्रविद नाम के पैदा किए। इन छः पुत्रों को राजा कंस ने मार डाला। ऐसी हालत में लोकनायक भगवान कृष्ण देवकी के सातवीं बार गर्भ से उत्पन्न हुए। इनके बाद सुभद्रा नाम की बहिन उत्पन्न हुई। इन्हीं सुभद्रा को कृष्ण नाम से भी पुकारते थे। कृष्ण के गर्भ से राजा अर्जुन ने महानवीर अभिमन्यु को पैदा किया। अब वसुदेव जी की दूसरी सन्तान का वर्णन सुनिये। राजा वसुदेव ने सहदेवा के संयोग से परमवीर भयासव नाम के पुत्र को पैदा किया। शाङ्गदेवा के गर्भ से तम्बु नाम के पुत्र पैदा हुए। शौरी ने कुलोद्वह नाम के पुत्र को पैदा किया उपदेवा ने उपदंग, वसु, देव, रक्षित, विजय, रोचन, और वर्धमान नाम के पुत्रों को पैदा किया। वसुदेव के इन दस पुत्रों को भी कंस ने मार दिया। बृकदेवी ने महात्मा स्वगाइव को पैदा किया। इन्हीं वृकदेवी को आगाही, स्वसा, सुरूपा, और शिशिरायणी भी कहते थे। सुन्दरी देवकी ने महाभाग्यशाली गवेषण नाम के पुत्र को पैदा किया। हे ब्राह्मणो! इन्हीं गवेषण ने श्राद्धदेव की रचना की थी। वसुदेव ने अपनी सैव्या नाम की पत्नि से कौशिकी नाम के पुत्र को पैदा किया। सुगन्धि और वनराजी स्त्रियों से वसुदेव ने पुण्ड्र और कपिल नाम के पुत्रों को पैदा किया। राजा वसुदेव के निषाद नाम का परम बलवान् धनुर्धारी पुत्र और था। देवरात के देवश्रवा नाम के महाभाग्यशाली पुत्र पैदा हुये। निवर्त ने अस्मकी से अनाद्दष्टि नाम के परम यशस्वी पुत्र को पैदा किया। इनके श्राद्धदेव और शक्रशत्रुघ्न नाम के पुत्र और हुए, जो एकलव्य के नाम से प्रसिद्ध थे। भगवान कृष्ण ने प्रसन्न होकर सन्तानहीन राजा गण्डूष को चारुदेष्ण और साम्ब नाम के दो पुत्र प्रदान किये। कनक के तन्तिज और तीन्तमाल नाम के पुत्र पैदा हुए। इन दोनों पुत्रों को राजा वसुदेव ने सन्तान विहीन वास्तावलि को दे दिये। सौत्ति ने शौरि और कौशिक को उसे देदिये। उसी वंश मे तपो, क्रोधनु, विरजा, श्याम, और सृञ्जिय नाम के पुत्र पैदा हुये। सन्तति हीन श्याम वन को चले

गए। उसको राजर्षि की उपाधि मिली थी, वह भोजत्व की बुराई करता था। जो मनुष्य श्रद्धा सहित भगवान कृष्ण के जन्म चरित्र को पढ़ता और सुनता तथा दूसरों को सुनाता है उसको सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। प्रजापति महातेजस्वी भगवान विष्णु विहार करने के लिए मनुष्य योनि में कृष्णरूप में अवतरित हुये थे। भगवान कृष्ण अपनी समस्त कान्ति से समन्वित होकर वसुदेव की कठिन तपस्या के फल स्वरूप देवी देवकी के गर्भ से पैदा हुये थे। जो सृष्टि के प्रारम्भ काल में प्रजापति ब्रह्मा जी की सृष्टि करते हैं वे ही आदि पुरुष भगवान कृष्ण अदिति के पुत्र रूप में पैदा होते हैं। वे यादव नन्दन भगवान कृष्ण अदिति के पुत्र होकर देवदेव विष्णु और इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। राषिंज ययाति के वंश में विद्वान वासुदेव जी का कुल परम पवित्र हुआ। जिसमें प्रभु नारायण स्वयं ही मनुष्य रूप में अवतरित हुए।

जिस समय भगवान कृष्ण पैदा हुये। उस समय पर्वत हिलने लगे, सागर काँपने लगे, अग्नि होत्र स्वयं ही प्रज्वलित हो गये। ठंडी २ हवा चलने लगी और सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र ग्रह इत्यादि चमक उठे। भगवान कृष्ण अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे उस समय जयन्ती नाम की रात्रि थी और निजय नाम का मुहुर्त्त था। जिस समय कमल नेत्र भगवान कृष्ण ने जन्म लिया उस समय इन्द्र ने मेघों से पुष्ट की वर्षा की और हजारों गन्धर्वों ने और महर्षियों ने भगवान कृष्ण की स्तुति की तथा नाचगान करने लगे। वसुदेवजी ने श्री वत्स चिन्ह से सुशोभित भगवान को पुत्र रूप में देखा और कहा कि हे प्रभो! आप अपने इस रूप को छोड़कर बालक रूप में आइये हे भगवन! मैं कंस से बहुत दुखी हूँ उसने मेरे सभी बड़े सुन्दर पुत्रों को मार डाला है। मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ वसुदेव जी की इस प्रकार दुखभरी वाणी सुन कर कमलनेत्र भगवान कृष्ण ने अपने उस दिव्यस्वरूप को समेट लिया। वसुदेव जी अपने पुत्र कृष्ण को उनकी आज्ञा नन्दगोप के घर जाकर यशोदा की गोद में

दे दिया उस समय संयोगवश नन्द जी की स्त्री यशोदा जी भी देवकी जी के साथ हीं गर्भवती थी जिस रात को भगवान कृष्ण ने जन्म लिया उसी रात्रि को यशोदा के गर्भ से एक सुन्दर कन्या का जन्म हुआ। वसुदेव जी ने भगवान कृष्ण को अच्छी प्रकार माता यशोदा की गोद में छिपा दिया और उस यशोदा की कन्या को लेकर आगये। वसुदेव जी ने नन्द गोप को कृष्ण भगवान को देदिया और कहा कि आप मेरे इस बालक की रक्षा करिए। तुम्हारा यह पुत्र सबकी भलाई करने वाला है और यदुकुल का उद्धार करने वाला है। देवकी का यह चिर अभिलाषित गर्भ है, यह हमारे सब दुखों को दूर करेगा। इस प्रकार कहकर बसुदेव जी अपने घर लौट आये, और उग्रसेन के पुत्र कंस को राजा वसुदेव जी ने उस कन्या को दे दिया और कहा कि हे राजन्! इस कन्या ने जन्म लिया है। अपनी बहिन देवकी की कन्या पैदा हुई सुनकर पापी कंस ने अच्छे बुरे का कुछ ध्यान न करके उसको भी प्रसन्न होकर छोड़ दिया, वह मूर्ख कहने लगा कि यदि कन्या ही उत्पन्न हुई है तो उसे मरी ही समझना चाहिए। इसप्रकार राजा कंससे छूट कर वह कन्या वृष्णिगृह में सुखपूर्वक दिन दूने बढ़ने लगी। वसुदेव देवकी भी उस कन्या को पुत्र की भांति पालने लगे। देवगण अपने में उसकी उत्पत्ति की बात करने लगे, प्रजा पति ब्रह्मा जी ने कहा कि यह देवी एकादशा भगवान की रक्षा के हेतु स्वयं ही अवतीर्ण हुई है। यादव वंश के मनुष्य उसकी श्रद्धा से पूजा करेंगे। भगवान कृष्ण की रक्षा इन्हीं एकादशा देवी ने की है।

ऋषि बोले—हे सूत जी! भोजवंश के राजा कंस ने वसुदेव के छोटे छोटे सभी पुत्रों को किस कारण से मार दिया। इसका वर्णन आप विस्तार सहित बतलाइये।

सूत जी बोले—

हे ऋषियो! दुष्ट राजा कंस वसुदेव जी के पहिले वचनानुसार तथा आकशावाणी के कारण कि वसुदेव के ८ वें पुत्र से मेरा काल है इस कारण वसुदेव जी के सभी पुत्रों को मार डाला था।

इसी कारण से वसुदेवजी नेभगवानकृष्ण को पैदा होतेहीगोकुल को पहुँचा दिया और गायों के बीच में भगवानपुरुषोत्तम कालालनपालन हुआ था। इस के विषय में यह कथा प्रचलित है। युवराज कंस वासदेव और देवकी के रथ को हांकता था। वह अपनी छोटी बहिन देवकी से बहुत प्यार करता था। एक बार जब वह रथ हांक रहा था, तो आकाशमण्डल से आकाशवाणी हुई कि हे 'कंस' जिसे तुम प्रेमवश अथवा वासदेवजी को प्रसन्न करने के लिये रथ पर घुमाते हो उसी के सातवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी। इस दिव्य कठोर वाणी को सुन कर कंस सदा भयभीत होता था। जब उसने यह वाणी सुनी तो शीघ्र ही तलवार लेकर देवकी को मारने की इच्छा प्रकट की। प्रताप शाली राजा वसुदेव ने ऐसी स्थिति देखकर उग्रसेन के पुत्र कंस से परम सौहार्द तथा प्रेम पूर्वक इस प्रकार कहा कि यादव नन्दन! क्षत्रिय जाति के मनुष्य कभी भी किसी भी स्त्री का बध नहीं करते हैं इस कार्य के लिये एक उपाय बतलाता हूं। हे पृथ्वी पति कंस! इस तुम्हारी बहिन देवकी के सातवें गर्भ से जो सन्तान उत्पन होगी, उस को मैं तुम्हें देदूँगा, उस समय तुम उस बच्चे का कुछ भी करना। हे विपुल दान करने वाले नर श्रेष्ठ! तुम उस का जो चाहो कर सकते हो, इसके सातवें गर्भ की तो क्या मैं इसके समस्त गर्भ के बच्चा को तुम्हें देदूँगा। वसुदेवजी के इस प्रकार कहने पर कंस ने वसुदेवजी की बात मान कर देवकी जी को जीती देखकर बहुत खुश हुए और उनके सभी पुत्रों का संहार राजा कंस कर देता था।

ऋषि बोले—हे सूत जी! ये नन्दगोप और वसुदेवजी कौन थे! जिनसे भगवान नारायण पैदा हुए! ये यशोदनी देवकी कौन थीं ये नन्दगोप की पत्नि यशोदाजी कौन थी, जिन्होंने भगवान का पालन पोषण किया, इन सबके बारे में आप बतलाइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! नन्दादि पुरुष कश्यप के अन्सभूत थे, और यशोदा जी तथा और स्त्रियां अदिति अन्शभूत थीं।

महाबाहु भगवान कृष्ण ने देवकी जी के सभी मनोरथों को पूर्ण किया था। ये देवाधिदेव भगवान योगेश्वर कृष्ण अपनी योगमाया से समस्त संसार को मोहित करके तथा धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वयं ही अवतीर्ण हुए। भगवान कृष्ण रुक्म की कन्या रुक्मणी को हर कर ले आये थे। उन्होंने नग्नजित की कन्या सत्या, सत्राजित की कन्या सत्राजिती, सत्य भामा, जाम्बवती, रोहिणी, सैव्या, सुदेवी माद्री, सुशीला, कालिंद्री, मित्रविन्दा, लक्ष्मण, जालवासिनी इत्यादि सोलह हजार कन्याओं के साथ विवाह किया था। इन्द्र ने देवताओं से सलाह करके स्वर्ग की परम सुन्दरी अप्सराओं के चौदह गणों को मृत्यु लोक में भेज दिया था। वे सभी वासुदेव की पत्नि होने के कारण राजाओं के घरों में पैदा हुईं। रुक्मणी ने प्रद्युम्न, चारु-देष्ण, सुदेष्ण, शरभ, चारु,चारु चन्द्र, भद्रचारु, चारुविन्द्या नाम के पुत्र तथा चारुमही नाम की कन्या को पैदा किया। सत्य भामा ने सानु, भानु, अक्ष, रोहित, मन्त्रय, जरान्धका ताम्रवक्षा, भौमरि जरन्धम नाम के पुत्र तथा मानु, भौमारिक' ताम्रपर्णी और जर—न्धमा नाम की चार कन्याऐं पैदा कीं। जाम्बवती ने भद्र, भद्रगुप्त भद्रविन्दु, भद्र बाहु नाम के पुत्र तथा भद्रावत नाम की एक कन्या पैदा की सुदेवी ने भगवान कृष्ण के संयोग से संग्रामजित, शत-जित, और सहस्रजित पुत्रों को पैदा किया। सत्या ने बृक, बृक-श्व, वृषजित, वृजिनी, सुराङ्गना, मित्रबाहु, सुनीच नाम के पुत्रो को पैदा किया। इस भगवान कृष्ण ने अपनी स्त्रियों के संयोग से हजारों पुत्रों और पुत्रियों को पैदा किया। इनमें से दसहजार आठ महान शूरवीर तथा रण में कौशल थे। मैंने भगवान कृष्ण के वंश का वर्णन सुना दिया है। शिनिवंश में राजा बृहदुकूथ की कन्या वृहती ने सुनथ के साथ विवाह किया, उनके अंगद कुमुद और श्वेत नाम के तीन पुत्र पैदा हुये और श्वेता नाम की एक कन्या पैदा हुई। अवगाह, चित्र और शूरचित्रवीर नाम के वृष्णि वंश में थे उनमें चित्रवर के पुत्र चित्र सेन हुये। और उनके चित्रवती

उपाङ्ग के वज्रार और क्षिप्र नाम के दो पुत्र पैदा हुये। गवेष के भूरीन्दसेन और भूरि नाम के दो पुत्र पैदा हुये। युधिष्ठिर की सुतनु नाम की कन्या ने अश्वसुत वज्र को पैदा किया। वज्र ने प्रति वाहु नाम के पुत्र को पैदा किया। प्रतिवाहु के सुवाक नाम के पुत्र पैदा हुये। काश्मा के सुपार्श्व नाम के पुत्रहुये, साम्बा के तरस्वी नाम के पुत्र पैदा हुये। इस प्रकार महा बलशाली यदुवंश के कुल तीन करोड़ सन्तानें उत्पन्न हुईं। इनमें साठ लाख पुत्र परम बलशाली और पराक्रमी थे। वे सब यदुवंश के देवताओं के अंगभूत होकर मृत्य लोक में उत्पन्न हुए। इन परम बलवान यदुवंशियों के ग्यारह कुल कहे जाते हैं। किन्तु जिस कुल में भगवान विष्णु ने अवतार लिया है उसी एक वंश का अनुवर्तन शेष सभी वंशों वाले करते रहे। मैं आप लोगों को वृष्णि वंश का वर्णन सुना चुका हूं। जो मनुष्य इस वर्णन को सुनता है उसको अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। भगवान कृष्ण के जन्म चरित्र के वर्णन को जो सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है उसके सभी प्रकारके दुख समाप्त होकर स्वर्ग प्राप्त करता है जिस मनुष्य के सन्तान नहीं है उसके इस चरित्र के सुनने से उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। तथा सभी प्रकार के धन, धान्य सन्तान से सुखी होकर परलोक में सुख प्राप्त करता है॥ ९६

[इति श्री वायु महा पुराण का विष्णु वंश वर्णन नाम का छियानवेवां अध्याय समाप्त]

सतानवेवाँ अध्याय

[विष्णुमाहात्म्य वर्णन]

सूतजी बोले हे ऋषियो! अब मैं आपसे मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले देवताओं के बारे में बतलाऊँगा। आप सब सुनिये। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, साम्ब, और अनिरुद्ध ये पांच यदुवंश के मुख्य वीर माने जाते हैं। सातों ऋषि, कुबेर, यक्ष, मणिवर, शालकी, वदर, श्रेष्ठ धन्वन्तरि, नन्दिन प्रभृति के अनुचर शालङ्कायन आदि देवताओं के साथ आदि देव विष्णु ये सभी देवता हैं।

ऋषि बोले— हे सूतजी ! भगवान विष्णु ने पृथ्वी पर किस लिए अवतार लिया, उनके कितने अवतार माने जाते हैं। और भविष्य में वे कितने अवतार लेंगे ! वे युगान्त के समय ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति में किस लिए उत्पन्न होते हैं वे इसप्रकार मानव योनि में बार २ किस लिये जन्म धारण करते हैं। भगवान विष्णु ने वसुदेव जी के पुत्र की उपाधि कैसे प्राप्त की। हम को इन सबके बारे में बतलाइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! मैं आपको तपोनिष्ठ भगवान विष्णु के मानव योनि में जन्म लेने का वृन्तान्त सुना रहा हूं। भृगु ऋषि के शाप के कारण भगवान के सतैहत्तर अवतार माने जाते हैं युगान्त के अवसर पर देवों के कार्य को सफल करने के लिए वे अवतीर्ण होते हैं जब युग धर्म का ह्रास हो जाता है और उसके प्रभाव शिथिबल हो जाते है। उस समय महामहिमा वाले भगवान भृगु के शाप के कारण देवासुर्गों के युद्ध की शन्ति के लिए और धर्म की व्यवस्था के लिये इस मृत्य लोक में पैदा होते हैं। ये ही भगवान के अवतार लेते हैं।

ऋषि बोले—हे सूत जी ! उस देवासुर संग्राम में भगवान विष्णु ने किस प्रकार अवतार लिया था और देवासुर संग्राम किस प्रकार संगठित हुआ था, इन सब का वर्णन आप हमको बतलाइये।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! प्राचीन काल में दैत्यों का राजा हिरण्यकशिपु त्रलोकी का शासक था, उसके बाद दैत्यराज वलि त्रिलोकी का स्वामी हुआ। उस समय दैत्य और देवों में परम मित्रता थी। इस प्रकार दस हजार वर्षों तक संसार में कोई उपद्रव नहीं हुआ। उसकी दोनों ही आज्ञा मानते थे। इसके बाद दैत्य और देवों में भयानक युद्ध छिड़गया। बाराह कल्प में बारह युद्ध हुए। जिनमें षण्ड और अमर्क सभीयुद्धों में शामिल थे। सबसे पहले, युद्ध नरसिंह का हुआ था दूसरा बामन का, तीसरा वाराह का चौथा अमृत-मन्थनका, पांचवा तारकामय का छठवां आड़ीवक और सातवां त्रिपुर दहनका था आठवां अन्धकार युद्ध,नववां ध्वज युद्ध, दसवां युद्ध वार्त था

ग्यारहवां हलाहल और बारहवां घोर कोलाहल युद्ध था । पहले युद्ध में दैत्यराज हिरण्यकशिपु को नरसिंह रूप धारी भगवान विष्णु ने मारा था। दूसरे युद्ध में तीनों लोकों पर आक्रमण करने वाले दैत्यराज वलि को वामन रूप धारी भगवान विष्णु ने बांधा, और देवताओं के साथ युद्ध होने पर भगवान ने हिरण्याक्ष को मार दिया। तीसरे अवतार में बाराह भगवान ने अपनी दाढ़ों से समुद्र में से पृथ्वी को निकाला था। चौथा अमृत मन्थन के समय देवराज इन्द्र ने दैत्यों के राजा प्रहलाद को हराया था, इससे प्रहलाद का पुत्र विरोचन नित्य ही इन्द्र से युद्ध करने की सोचता था, अतः अन्त में इन्द्र ने महान वल के साथ तारकामय युद्ध में उसका वध किया था। उस दैत्य ने शंकरजी की आराधना करके उनसे अमरत्व प्राप्त किया था और शस्त्रादिकों से न मरने का वरदान प्राप्त किया, तब इन्द्र ने शरीर में आविष्ट होकर युद्ध भूमि में भगवान विष्णु ने उसका वध किया था। छठवां देवासुर संग्राम था उसमें असुरों के पास एक सुरक्षितदुर्ग था, उसकी रक्षा करने वाले दैत्यराज देवताओं की प्रतिष्ठा को सहन न कर सके। अम्बक भगवान शिवजीने उस त्रिपुरको भस्म करके सभी दानवों का संहार कर दिया। आठवां देवासुर संग्राम में अन्धकार स्वरूप असुर और राक्षसों के साथ देवताओं का युद्ध हुआ था, उसमें देवताओं और मनुष्यों को परास्त करने वाले पितरगण उनकी सहायता कर रहे थे। भगवान विष्णु की सहायता से भगवान शंकर जी ने सभी दैत्य, राक्षस, असुरों को नष्ट कर दिया । नवां युद्ध विप्रचिति के साथ हुआ था, वह युद्ध में माया रूप धारण करके युद्ध करता था महेन्द्र ने उसके रथ के ध्वज का लक्ष्य कर उसे काट दिया और उसके साथ युद्ध करने वाले सभी असुर राक्षसों को भी मार दिया। दसवां महान कोलाहल युद्ध था।देवताओं सहित रजि ने महान कोलाहल नामक युद्ध में सभी राक्षसों को मार दिया, उसमें देवताओं ने यज्ञीय अमृत द्वारा असुरों के पुरोहित षण्ड और अमर्क को परास्त किया था। देवता और असुरों के

ये ही बारह युद्ध हुए थे। जिनमें लाखों दैत्यों और देवताओं का संहार हुआ था। उसमें प्रजा का भी बहुत अमंगल हुआ था। दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने एक अरब बहत्तर लाख अस्सी हजार वर्षों तक सम्पूर्ण त्रिलोकी पर राज्य किया था। उसके बाद दैत्यराज वलि ने एक अरब साठ हजार बीस नियुत वर्ष तक राज्य किया, जितने वर्ष तक वलि ने राज्य किया उतने ही वर्षों तक प्रहलाद ने भी राज्य किया था। सभी असुरों में ये तीन हिरण्याक्ष, प्रहलाद और वलि ही परम तेजस्वी और इन्द्र के समान वलशाली थे। यह समस्त संहार दैत्यों से दस युगों तक भयभीत रहा था, उसके बाद दस युगों तक निष्कण्टक राष्ट्र रहा, इस समय इन्द्र त्रिलोकी की रक्षा करते थे। प्रहलाद के बाद यह शासन पाक शासन (इन्द्र) के हाथों में आया। प्रहलाद के शासन के बाद यक्षगण असुरों को छोड़कर देवताओं के पास आ गये। तब असुरों ने शुक्राचार्य से जाकर कहा– हे आचार्य ! हमारे सामने यह हमारा राष्ट्र नष्ट हो गया। यज्ञादि शुभ कर्म हमें छोड़कर पुनः देवताओं के पास चले गये हैं। अतः अब हम यहां नहीं ठहर सकते। हम सब रसातल को जा रहे हैं। इस शुक्राचार्य को महान दुख हुआ। और असुरों को सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा– आप डरें नहीं मैं अपने तेज से आप लोगों की रक्षा करूँगा। वृष्टि अन्न, पृथ्वी औषधियां रत्न आदि सब मेरे आधीन हैं उनका चौथा अंश ही देवताओं के पास है। उसे आपके कल्याण के लिये उन्हें मैं आपको सौंपता हूं। शुक्राचार्य के द्वारा असुरों की रक्षा होते देख कर देवता लोग घबराये और आपस में मन्त्रणा करने लगे। जब तक शुक्राचार्य उनकी रक्षा करने की तैयारी करें तब तक आप लोग असुर पर एकदम आक्रमण कर दो। बचेखुचे असुर पातालको खदेड़ दिये जांयगे। ऐसा विचार कर देवता लोग एक दम आग खड़े हुये। और असुरों का खूब संहार किया। दानवगण त्रस्त होकर शुक्राचार्य की शरण में आये। दैत्यों ने शुक्राचार्य से दीन होकर कहा--वामन ने तीनडगों में

पृथ्वी को बाँध लिया बलि भी बांधा गया। महाबलशाली जम्भ और विरोचन मारे गये। देवताओं ने प्रमुख प्रमुख दैत्यों का संहार करके अपना पूर्व का बदला लिया है। अब आप लोग थोड़ी संख्या में शेष बचे हैं इसपर शुक्राचार्य ने कहा कि आप कुछ समय की प्रतीक्षा करें मैं आपको एक बात बतारहा हूँ मैं मन्त्र प्राप्त करने अभी महादेवजी के पास जाता हूँ उधर देवता लोग गुरुबृहस्पति जी की मन्त्रणा से अग्नि को प्रसन्न कर रहे हैं। महादेवजी की कृपा से मैं आप पर कृपा करूँगा। आप लोग वन में वल्कल धारण कर तब तक तपस्या कीजिये। इस प्रकार देवता आपका संहार भी नहीं करेंगे। मन्त्र प्राप्ति के बाद हम देवताओं से युद्ध छेड़ देंगे। और सभी की विजय होगी। ऐसा शुक्राचार्य के कहने पर असुर उनके आदेश को मानकर शान्त रहे। देवताओं के युद्ध के लिये आह्वान करने पर उन्हों ने कहा, 'हम सब लोग संसार के झगड़ों से दूर होगये हैं, आप लोग जाकर अब सभी लोकों पर अधिकार प्राप्त कीजिये। हम लोग वन में जाकर तपस्या करेंगे। इस प्रकार प्रहलाद के कहने पर देवताओं ने युद्ध करना बन्द कर दिया। वे बहुत प्रसन्न हुये। दैत्यों के युद्ध बन्द करने पर देवता जहां जहां से आये थे वहीं लौट गये इसके बाद शुक्राचार्य जी ने दैत्यों से कहा कि तुम भी इसी प्रकार कुछ दिन शान्ति से रहो उस समय तक तुम्हारा कार्य सिद्ध न हो जाय, तुम तपस्या करते रहो क्योंकि सभी इन्द्र सहित देवता हमारे पिताजी के आश्रम में स्थित हैं। इस प्रकार दैत्यों से कह कर शुक्राचार्यजी महादेवजी के पास जाकर कहा मुझको इस प्रकार के मन्त्र दीजिये, जो मन्त्र बृहस्पति जी को नहीं मालूम हैं, जिससे दैत्यों का दुख दूर होजाय। शुक्राचार्य जी के इस प्रकार कहने पर महादेवजी ने कहा हे द्विज ! जिन मन्त्रों को तुम प्राप्त करनाचाहते हो, उनकेलिये तुम एक हजार वर्ष तक ब्रह्मचर्य बृत का पालन करो, और सिर को नीच करके कुण्ड के धूम्र का पान करो, यदि तुम इस प्रकार नियम पूर्वक पालन करोगे, तो मुझसे वैसे ही मन्त्रों को प्राप्त करोगे। देवाधिदेव भगवान शंकर के इस प्रकार कहने पर शुक्राचार्य ने

उनके चरणों में प्रणाम करके कहा कि हे प्रभो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है जिस प्रकार आप कहेंगे हम उसी प्रकार करेंगे। इस प्रकार महादेवजी की आज्ञा से शुक्राचार्य जी दैत्यों के लिये कुण्ड के धूम्र का पान करने लगे। इधर शुक्र के दैत्यों के पास से जाकर मन्त्र के लिये शिवजी के कहने के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का भेद देवताओं को मालूम होगया। दैत्यों की तपस्या और राज्यत्याग को एक चाल समझ कर उनको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने (देवताओं) अपने तीक्ष्ण शस्त्र लेकर बृहस्पतिजी को आगे करके दैत्यों पर आक्रमण कर दिया। दैत्यलोग बिना हथियार के शस्त्र से लड़ते हुये देखकर बहुत भयभीत होगये तथा भाग खड़े हुए। उन सबों ने सलाह की कि ऐसी अवस्था में जब कि हमारे गुरु तपस्या करने में निरत हैं और हम लोगों ने युद्ध में हथियार डाल दिये हैं अपने मुख से ही हमने उनको विजय देदी है, तब देवता लोग युद्ध की रीति तोड़ कर हम सबसे युद्ध करने के लिये तैयार हैं। हम लोग तो विश्वास पूर्वक तपस्या करने में निरत हैं और इस समय हमारे गुरु भी नहीं हैं। इसीलिए हमने चीर और वल्कल पहने हैं हमारे साथ में स्त्री और भृत्य भी नहीं है, हम कुछ कार्य भी नहीं करते हैं। युद्ध में हम किसी प्रकार भी देवताओं से नहीं जीत सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमको शुक्राचार्य जी की माता की शरण में जाना चाहिये। जब गुरु के आने पर उनको सारा हाल बतायेंगे। अपने गुरु शुक्राचार्य के व्रत इत्यादि से निवृत होकर लौटने पर हम इनसे युद्ध करेंगे। असुरों ने इस प्रकार कह कर सबके सब मिल कर शुक्राचार्य की माता के पास गये। उस समय वे बहुत भयभीत हो रहे थे, वहां जाने पर उनके सभी दुख दूर होगये। डरते हुए असुरों को देखकर शुक्राचार्य की माता ने उनको आश्वासन देकर कहा हे असुर गण! तुम डरो मत। मेरे पास ही रहो, यहां तुम्हें कोई बात का डर नहीं है। वहां पर भय से रहित असुरों को देखकर देवताओं ने उनका खूब संहार किया।

देवताओं के इस प्रकार दैत्यों के मारने पर देवी शुक्राचार्य की माता बहुत क्रोधित हुई और देवताओं से कहने लगी कि मैं तुम सबको इन्द्र से अलग कर रही हूँ, इस प्रकार क्रोध से कह कर देवी शुक्राचार्य की माता ने देवराज इन्द्र को स्तम्भित कर दिया,और इधर उधर घूमने लगी। इन्द्र को यज्ञ के खम्भे की तरह स्तम्भित देखकर उन्हें परवश जान कर सभी देवता बहुत भयभीत हुए,और भागने लगे। देवों के इस प्रकार भागने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा कि तुम मेरे शरीर में घुस जाओ। विष्णु के इस प्रकार कहने पर इन्द्र उनके शरीर में घुसगये। इन्द्र को विष्णु द्वारा इस प्रकार सुरक्षित देखकर देवी क्रोधित होकर बोली "मधुवन ! मैं अब तुमको यहीं पर सबके सामने अपने तपोबल से विष्णु के साथ ही जलाती हूँ।, इस प्रकार शुक्राचार्य माता से परास्त होकर दोनों देवताओं ने आपस में सलाह की विष्णु ने इन्द्र से कहा कि इनसे हम दोनों किस प्रकार बचें। इन्द्र ने कहा कि हे प्रभो ! मैं तो असमर्थ हूँ और आप इन का वध करदो।, विष्णु ने इस प्रकार उस देवी को जलाने के लिये तैयार देख कर उन्हों ने सुदर्शन चक्र का ध्यान किया और शीघ्र ही स्त्री के बध करने को तैयार होगये।

असुरों के संहार करने वाला वह सुदर्शन चक्र, शीघ्र ही वहां आगया और भगवान उस देवी को परम नृशंस कार्य करते देख कर क्रोधित होगये और बैकुंठ निवासी लक्ष्मीपति होकर भी उन्होंने देवी शुक्राचार्य की माता के सिर को अपने चक्र से काट दिया। इस कठोर स्त्रीवध को देखकर महर्षि भृगु बहुत क्रुद्ध होगये,और उन्होंने भगवान को शाप दे दिया कि हे विष्णु ! तुमने मेरी स्त्री का वध किया है,इस कारण मैं तुमको शाप देता हूँ कि धर्म के महत्व को जान कर भी तुमने स्त्री का वध किया है अतः तुमको पृथ्वी पर मानवयोनि में सात बार जन्म लेना पड़ेगा।, भृगु महर्षि के शाप के कारण ही भगवान विष्णु धर्म के नष्ट होजाने पर बारबार जन्म लेते हैं। इसके बाद भृगु ने भगवान विष्णु को शाप देकर स्वयं ही अपनी पत्नि के सिर को उठाकर शरीर धड़ से जोड़कर और हाथ में जल

लेकर इस प्रकार बोले कि 'हे सत्यवादिन ! विष्णु के द्वारा मारे जाने पर मैं तुमको पुनः जीवित कर रहा हूं। यदि मैंने धर्म के साथ सभी तत्वों का ज्ञान किया है और सर्वदा सत्य वचन का पालन किया है तो तुम पुनः जीवित होकर उठ बैठो। भृगु महर्षि के इस प्रकार कहने पर उनकी पत्नि इस प्रकार उठ बैठी मानो सोकर उठी हों। देवी को जीती देखकर दशों दिशाओं में साधु, साधु की अदृश्य ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। परम सावधान चित्त महर्षि भृगु द्वारा उनकी पत्नि जीवित देखकर इन्द्र शुक्राचार्य जी से बहुत भयभीत हुये, और इसी सोच विचार में उनको रात भर नींद नहीं आयी, उनके चित्त में शान्ति न मिली इस प्रकार अत्यन्त दुखी होकर राजा इन्द्र ने अपनी जयन्ती नाम की पुत्री से कहा कि बेटी ! तू जाकर शुक्राचार्य जी को अपने मंगल कार्यों और उनकी मनोनुकुल सेवाओं से प्रसन्न कर। दैत्यों के स्वामी शुक्राचार्य मेरे विनाश के लिए तत्पर हैं। इन्द्र की इस प्रकार बात को सुनकर उनकी पुत्री जयन्ती शुक्राचार्य के पास गई, और वहां जाकर उसने देखा कि शुक्राचार्य ध्यान में मग्न थे, वे बहुत दुर्बल हो गये थे। इन्द्र की पुत्री जयन्ती स्वभाव से ही शुभ कर्म करने वाली मृदुभाषिणी थी। उसने मीठी वाणी से शुक्राचार्य की स्तुति की समय समय पर सुख पहुँचाने के लिए चरण का संवाहन किया। बहुत अनुकुल आचरण करती हुई, सेवा में दिन रात दत्तचित्त रहकर उसने वर्ष तक उपवास किया। इस प्रकार उस कठिन धूम्रव्रत के समाप्त हो जाने पर महादेव शुक्राचार्य जी के ऊपर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा हे भृगु पुत्र ! इस कठिन तप को तुम्हारे सिवाय और किसी ने नहीं किया, इसी लिये तुम अपनी बुद्धि, शास्त्र ज्ञान, पराक्रम से देवों को परास्त करोगे हे ब्राह्मण ! यज्ञों और उपनिषदों की जो कुछ भी मन्त्र शक्ति मुझमें विद्यमान है। उनके भी जो विविध अंग उपांग और गूढ़ रहस्य मुझे ज्ञात हैं, वे सब तुम को प्रदान करता हूं। महादेवजी शुक्राचार्य को इस प्रकार वरदान

देकर बार बार अजेय, धनेश और अवध्य होने का वरदान दिया। इन सब वरदानों के मिलने के बाद शुक्राचार्य जी बहुत खुशी हुये। इस खुशी के कारण उन्होंने सिर नीचा करके नील लोहित भगवान शंकरजी की इस प्रकार स्तुति की—

शीतकंठ भगवान को हम प्रणाम करते हैं। सुरुप, सुवर्चा, रिरिहाण, लोप, वत्सर, जगत्पति, कपर्दी, हय, करण, संस्कृत, सुतीर्थ देवदेव, रह, उष्णीषी, सुवक्त्र, सहस्रास, मीढुष, वसुरेता, रुद्र, तप, चीटवासा, हस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृद्ध, तक्षकीड़न गिरिश, अर्कनेत्र, यति, जाम्बव, सुवृत्त, सुहस्त, धन्वी, भार्गव, सहस्रबाहु, सहस्रअमलचक्षु, सहस्रकुक्षि, सहस्रचरण, सहस्रगिरि, बहुरुप, वेधा, भव, विश्वरूप, श्वेतपुरुष, निषंकी, कवची, पिनाक, सर्प, एकवीर, ईश्वर, मृत्यु, मेध्य धर्मी भग्घन नामों वाले भगवन को हम प्रणाम करते हैं। हे भगवन्! आपके अनेक नाम हैं हम आपको उन्हीं सब नामों सहित प्रणाम करते हैं। हे भगवन्! आप प्रणव, ऋगु, यजु, साम तीनों वेद स्वधा; सुधा, स्रष्टा, धाता, होता, हर्ता, क्षपण, भूतभव्य, भव नामों वाले काल स्वरूप, वसु, साध्य रुद्र, आदित्य, अग्नि, सोम, सत्य, त्याग, शम, अहिंसक, अलोभ सुवेश, सर्वात्मा सर्वभूतात्मभूत, योगात्मन प्रभो! हम आपको नमस्कार करते हैं। पृथ्वी आकाश, दिव, मह, जप, तप, सत्य, अव्यक्त महान भूत, इन्द्रिय, तन्मात्र, महान्त, नित्यलिंग, सूक्ष्म, चेतन, सुद्ध, विभु नित्यात्मन महान लोकों में व्याप्त रहने वाले प्रभो! हम आपको प्रणाम करते हैं। हे प्रभो! इस स्तुति के नाम के उच्चारण करने वाले को आप अपना भक्त जानकर क्षमा करदें भगवन् आप प्राणियों पर कृपा करने वाले हैं।

[इति श्री वायु महापुराण का विष्णु माहात्म्य वर्णन नाम का सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अट्ठानवेवाँ अध्याय

[विष्णु महात्म्य वर्णन]

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! नीललोहित भगवान शंकर जी की इस प्रकार स्तुति करके शुक्राचार्य ने उनको पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर ब्रह्म का उच्चारण किया, उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान महादेवजी ने शुक्राचार्य के शरीर पर हाथ फेरा और उन्हें पर्याप्त दर्शन देकर वहीं पर अन्तधीन होगये। इसके बाद शुक्राचार्य जी ने अपने सामने सुन्दरी को हाथ जोड़े खड़े हुये देखा तो वे बोले हे सुन्दरि ! तुम किस की कन्या हो, मेरे साथ दुख के समय दुख उठाने वाली सुन्दरि तुम कौन हो ? हे सुन्दर अंगों वाली सुश्रोणि ! तुम्हारी इस सर्वदा एक रूप रहने वाली भक्ति, प्रणाय, कष्टसंहिष्णुता और स्नेह से मैं बहुत प्रसन्न हूं हे सुन्दरि ! तुम क्या चाहती हो मैं तुम्हारी कौन सी इच्छा पूर्ण करूँ तुम्हारी जो भी इच्छा होगी उसे मैं आज अवश्य पूर्ण करूँगा। वह चाहे कितना भी कठिन कार्य क्यों न हो। शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा कि हे ब्रह्मर्षे ! तुम मेरी सभी अभिलाषाओं को अपने तपोबल से जान सकते हो। मेरी सारी अभिलाषओं को आप जानते हैं। जयन्ती के इस प्रकार कहने पर शुकाचार्य ने अपने दिव्य दृष्टि से उसके सभी मनोरथों को जान लिया और उससे बोले हे इन्द्र पुत्री ! सुन्दरि ! तुम यहाँ मेरी रक्षा करने के लिये आईं थीं, हे भामिनी ! सुश्रोणि ! तुम मेरे साथ दस वर्षों तक सभी प्राणियों से अदृश्य होकर निवास करना चाहती हो। हे देवेन्द्र पुत्रि ! अग्नि के समान गौर वर्ण वाली ! सुन्दरि ! सुलोचने ! मैं तुम्हारे इस मनोरथ को पूर्ण करूँगा। हे मत्त चाल चलने वाली ! तुम मेरे साथ मेरे निवास स्थान पर चलो। इस प्रकार जयन्ती से बातें करके और जयन्ती को साथ लेकर शुक्राचार्य अपने निवास स्थान पर आये और सभी प्राणधारियों से अदृश्य होकर उसके साथ दसवर्षों तक रहने का विचार किया। इधर अपने मनोरथ को सफल होकर लौट आने का हाल शुकाचार्य का दैत्यों को मिला, तो वे सभी उनके दर्शन के लिये उनके आश्रम पर आये।

वहां जाने पर जयन्ती के साथ अज्ञात वास करने पर अपने गुरू को नहीं देख पाये, और उनके इस नीति शास्त्र को देखकर बहुत खुश हुये । उधर देवगुरु बृहस्पति को यह मालूम हुआ कि देवों की हित कामनाकारी जयन्ती अपने पिता की भलाई के लिये दस वर्षों से शुक्राचार्य के पास गई थी, और शुक्राचार्य को एकान्तवास करते सुना, तो उनको एक अच्छा अवसर मिला, और उन्होंने शुक्राचार्य का रूप रख कर उन दर्शन हेतु आये हुये असुरों से कहा कि मेरे यजमानों का आदर है, तुम लोगों की भलाई के कारण ही मैं अपनी तपस्या से निवृत्त हो कर लौट आया हूँ। मैंने वह विद्या पढ़ी है जिसको प्राप्त करने को इतना कठोर तप करना पड़ा है, वह विद्या मैं तुम सबको पढ़ाऊँगा । बृहस्पति की ऐसी बात सुन कर सभी असुर बहुत प्रसन्न हुये और वहां विद्या पढ़ने के लिये इकट्ठे हो गये । जयन्ती के अनुरोध पर दस वर्ष समाप्त होने के बाद शुक्राचार्य जी का मोह नष्ट हुआ, और उनको ज्ञान प्राप्त हुआ, समय के समाप्त होने के अन्त में उनके संयोग से जयन्ती के देवयानी नाम की कन्या पैदा हुई । इसके बाद उन्होंने अपने यजमानोंको देखने का विचार किया।

शुक्राचार्य बोले— हे शुचिस्मिते ! हे देवी ! साध्वी ! दीर्घ नेत्र वाली ! सुन्दर प्रेक्षणो ! मैं अब तुम्हारे यजमानों को देखना चाहता हूँ । शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा हे महाव्रत ! अपने यजमानों का कल्याण कीजिये, सत्पुरुषों का यही धर्म है, मैं आपके धर्म को नष्ट नहीं करूंगी ।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! जयन्ती से इस प्रकार शुक्राचार्य जी ने बातें करके अपने यजामन असुरों को जाकर देखा कि देवों के गुरु बृहस्पति ने उनका रूप धारण करके असुरों को मोहित कर लिया है । ऐसा देखकर वे असुरों से कहने लगे कि हे असुरो ! ये तो अंगिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति हैं, शुक्राचार्य तो मैं हूँ मेरे रहते हुये भी तुम लोग ठग गये । शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर असुर लोग आश्चर्य चकित हो गये, और वहीं पर परम खिन्न होकर दोनों गुरू

की ओर देखने लगे बहुत देर के बाद भी वे यह निश्चय नहीं कर सके कि इनमें कौन से गुरू हैं । बहुत देर हो जाने के बाद शुक्राचार्य जी बोले अरे दानवो ! शुक्राचार्य तो मैं ही हूँ यह तो वृहस्पति हैं । मेरी आज्ञा मान कर इनको छोड़ दो । सब असुर इस प्रकार सुन कर दोनों की तरफ देखने लगे, उन्हें दोनों में कोई विशेषता नहीं जानपायी तब निर्भय होकर वृहस्पति ने उन दानवों से कहा हे दानवो ! मैं ही शुक्राचार्य हूँ, यह तो वृहस्पति मेरा रूप रख कर तुम लोगों को ठगने आया है वृहस्पति की ऐसी बात सुन कर दानवों ने निश्यच किया कि ये ही हमारे गुरू शुक्राचार्य हैं परम ऐश्वर्य शाली यही हमको दस वर्ष से पढ़ा रहे हैं यही हमारे वास्तविक गुरू हैं । यह ब्राह्मण हम लोगों के भेद को जानने की इच्छा से वेश बनाकर यहां आया है । इस प्रकार दैत्यों ने मोह वश वृहस्पति को ही अपने शुक्राचार्य समझ कर प्रणाम किया और उन्हीं की आज्ञा का पालन किया । वे शुक्राचार्य के ऊपर बहुत क्रोधित हुऐ और नेत्र लाल करके बोले तुम हमारे गुरू नहीं हो, हमारे गुरू तो यहां हैं । तुम यहां से चले जाओ । यह चाहे भृगु पुत्र शुक्राचार्य हों, चाहे अंगिरापुत्र वृहस्पति हों, अब तो यही हमारे गुरू हैं । तुम यहां से शीघ्र ही चले जाओ, इस प्रकार कह कर दैत्यगण वृहस्पति के पास चले आये। इस प्रकार शुक्राचार्य की बातों की अवज्ञा करने से शुक्राचार्य ने क्रोधित होकर दानवों को शाप दे दिया कि मेरे कहने पर भी तुम नहीं समझ रहे हो अतः तुम्हारी सब की चेतना मारी जायगी, और निश्चय ही दैत्यों की पराजय होगी । दैत्यों को इस प्रकार शाप देकर शुक्राचार्य जहां से आये थे वही चले गये इधर शुक्राचार्य के शाप देने पर असुरों को दूषित दुखी देखकर वृहस्पति अपने कार्य में सफल होते जान वहीं पर अन्तर्धान हो गये ।

इस प्रकार वृहस्पति के अन्तर्धान होने पर दानवगण बहुत दुखी हुये, और आपस में इस प्रकार कहने लगे कि 'हाय' उसने हम को ठग लिया, हमको धिक्कार है । हम अपने कर्तव्य से विमुख हो गये ।

इसी कारण विधाता ने हमको दण्ड दिया है। अपने कार्य को सफल करने के लिए देवगुरु बृहस्पति ने हमको ठग लिया, इस तरह हम लोगों का नाश हो गया। इस प्रकार बातें करते हुये दैत्यगण देवताओं से बहुत भयभीत हुए, और भाग कर प्रहलादजी को आगे करके पुनः शुक्राचार्य जी के पास आये और शुक्राचार्य के पास जाकर नीचे मुँह करके खड़े हो गये। शुक्राचार्य ने पुनः अपनी शरण में आये अपने यजमान दैत्यों को देखकर कहा– हे दैत्यो ! मैंने तुम्हें ठीक समय पर समझाया बुझाया था। परन्तु तुम लोगों ने मेरी बात नहीं मानी। अतः उसी अभिमान से तुम्हारी यह हार हुई है। यह सुनकर प्रहलाद ने कहा– आप यह सब बातें छोड़ कर अपने भक्त असुरों को बचाने का प्रयत्न कीजिये। हमें देवों के गुरू ने ठग लिया था। हमारी रक्षा कीजिये। यदि आप हमारी रक्षा नहीं करते तो हम रसातल का जा रहे हैं।

सूतजी बोले— दैत्यों के इस प्रकार निवेदन करने पर शुक्राचार्य का क्रोध शान्त हो गया और दैत्यों से बड़े करुणापूर्वक बोले– तुम डरो मत, रसातल को मत जाओ। अदृष्ट महाबलवान होता है। मेरे बचाने पर भी यह घटना अवश्य होती। ब्रह्मा ने कहा था कि तुम्हारा अवनति का समय अवश्य प्राप्त हो। अतः हुआ। मेरी कृपा से आप लोगों ने यह त्रिलोकी कीसभी समृद्धि भोगी हैं। देवों से आक्रमण द्वारा छीन कर राज्य करते हुये तुम्हें दस युग बीत गये हैं। उतने ही समय का राज्य ब्रह्मा ने तुम्हारे लिये कहा था। सावर्णिक न्भवन्तर के प्राप्त होने पर पुनः तुम्हें राज्य की प्रप्ति होगी। उस समय तुम्हारा पौत्र वलि समस्त लोकों का ईश्वर बनेगा। ये सब ब्रह्मा जी ने स्वय कहा है। यह अवश्य होगा तपस्या के द्वारा वलि को ब्रह्मा जी के वरदान से समस्त देवों का वैभव प्राप्त होगा। इस समय तुम इस काल चक्र को सहन करो। इस समय तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। बृहस्पति के शिष्य देवता और हमारे शिष्य तुम दोनों मेरे लिये समान हो तथापि युद्धमें तुम्हारी औरवृहस्पति देवों की रक्षातो अवश्य करेंगे।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! इस प्रकार कह कर शुक्राचार्य के साथ प्रहलाद आदि दैत्य लोग चले गये। अवश्य घटित होने वाली घटना अवश्य होगी। ऐसा शुक्राचार्य से सुनकर दानवों ने यह अर्थ लगाया कि दैत्यों का राज्य एक बार अवश्य होगा ही अतः क्यों न युद्ध छेड़ दिया जाय। ऐसा निश्चय कर दानवों ने पुनः अस्त्र शस्त्रों को लेकर देवताओं को आह्वान किया। देवता भी संग्राम में कूद पड़े। वह घोर देवासुर संग्राम सौ वर्षों तक बराबर चलता रहा। अन्त में असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त कर ली। तब पराजित देवों ने आपस में मिल कर सम्मति की।

देवतागण बोले— हम लोग दैत्यों के सहायक के प्रभाव को नहीं जान पाते। अतः उसके कल्याण के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। उसमें इनको बुलाना चाहिये। उस यज्ञ में इनको बहका कर हम असुरों को जीत लेंगे। ऐसी मन्त्रणा एकान्त में करके यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। यह मन्त्रणा करके उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। और उसमें षण्ड और अमर्क का आवाहन किया।

यज्ञ में उनके आने पर उनसे निवेदन किया। हे श्रेष्ठ द्विजो ! हम आपको इस प्रकार के यज्ञों में बराबर बुलाते रहेंगे। आप असुरों का साथ छोड़ दीजिये। दानवों को पराजित कर लेने के बाद हम उन्हें पुनः ग्रहण कर लेंगे। देवों की इस प्रार्थना पर षण्ड और अमर्क ने दानवों का संग छोड़ दिया। इस प्रकार देवता लोग उनसे विजयी हो गये। और देवों ने दैत्यों को पराजित कर दिया। शुक्राचार्य के शाप कारण दानव देवों से पीड़ित होकर रसातल को चले गये। तभी महर्षि भृगु के उसी नैमित्तिक शाप के कारण यज्ञादि का ह्रास होने लगा। धर्म का ह्रास होता देख कर भगवान विष्णु ने धर्म की स्थापना और अधर्म के नाश के कारण जन्म धारण किया। चाक्षुष मन्वन्तर में जब दानव प्रहलाद के वंश में नहीं रहे तब उन्हें मारा जा सकता था तभी भगवान नारायण का जन्म हुआ था ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है।

वैवस्वत मन्वन्तर में पुनः यज्ञों का प्रचलन हुआ। स्वयं ब्रह्मा जी यज्ञ के पुरोहित बने। सभी हिरण्यकशिपु को मारने के लिये नर-सिंह रूप में भगवान ने दूसरी बार अवतार लिया।

सातवें त्रेता युग में जब राजा बलि समस्तलोकों का एक मात्र अधीश्वर का सभी लोक असुरों के भय से त्रस्त थे। ऐसे समय में भगवान विष्नु ने वामन भगवान का अवतार धारण किया यह उनका तीसरा अवतार था। उस समय भगवान ने अपने अंगों को समेट कर छोटा बना लिया था। बलि की यज्ञ शाला में भगवान नरायण ब्राह्माण का भेष धारण करके पहुँचे। उस समय शुभ अवसर प्रदान कर उन्होंने निवेदन किया कि हे राजन! आप समस्त नौलोक के राजा हैं आप सर्व समर्थ और प्रजा को आनन्द देने वाले हैं। आप मुझे तीन पग भूमि दान करदें। भगवान की बात सुनकर बिरोचिन के पुत्र बलि ने कहा अच्छा मैं आपको तीन पग भूमि दूँगा। उसने उन्हें ब्राह्मण वेष में अति छोटा समझ कर यह कह दिया था। उसको इस दान से अति प्रसन्नता हो रही थी। परन्तु हे ऋषियो! भगवान ने तीन पगों में स्वर्ग आकाश एवं पृथ्वी सभी को नाप लिया। उस समय भगवान अपने तेज से सूर्य को भी फीका कर रखा था। अपने तेज से सभी दिशायें प्रभाशित करदी थीं। उस समय उनकी अपार शोभा थी। इस प्रकार भगवान ने समस्त आसुरी सम्पत्ति को छीन कर नमुचि प्रहलाद आदि असुरों को उनके पुत्र पौत्रादिकों के सहित पाताल लोक में भेज दिया। कर दैत्यों को भगवान ने मार डाला। और कितने असुर तो उनके भय से अनेकों दिशाओं में भाग गये। इस प्रकार लक्ष्मी पति नरायण ने समस्त जीवों को सुखी कर दिया। उस समय उन्होंने अपने अद्भूत स्वरूप को ब्राह्मणों को दिखलाया। ब्राह्मणों ने उस जगतात्मा के उस शरीर में समस्त चराचर जगत का दर्शन किया था, और उन्होंने अपने को भी उसी में स्थित देखा। उस समय भगवान विष्णु के उस महान से मोहित देवताओं, दानवों और मनुष्यों

भगवान् विष्णु के इस रूप को देखा और वे सब मोहित हो गये। राजा बलि को उनके मित्र और परिवार के साथ पाश में बांध कर पाताल लोक में स्थित कर दिया। इसके बाद सारे संसार के ऐश्वर्य को इन्द्र राजा को सौंप दिया। भगवान जनार्दन ने मनुष्य योनि में भी जन्म लिया था। उनकी ये तीनों सम्भूतियां देवयोनि की थीं। मनुष्य योनि की सात सम्भूतियां भृगु ऋषि के शाप के कारण हुई थी, अब मैं उनका वर्णन करूँगा।

दसवें त्रेतायुग में धर्म के नष्ट होने पर मार्कण्य ऋषि के साथ दत्तात्रेय रूप में पैदा हुये, यह भगवान का चौथा अवतार कहलाता है। पन्द्रहवें त्रेतायुग में राजा मान्धाता के राज्य में तथ्य सहित अवतार हुआ था, यह पांचवां अवतार था। उन्नीसवें त्रेतायुग में विश्वामित्र के साथ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में जन्म लिया, यह छठवां अवतार था। इसके बाद चौबीसवें त्रेतायुग में वशिष्ठ गुरू के साथ रावण के विनाश करने के कारण दशरथ पुत्र राम के रूप में प्रकट हुये। इसी प्रकार अट्ठाइसवें द्वापर युग में भगवान विष्णु ने जातूकर्ण के साथ परासर ऋषि के संयोग वेदव्यास से रूप में पैदा हुये, यह उनका आठवां अवतार था। नवें अवतार में अदिति स्वरूप देवकी के गर्भ से और वसुदेव के पुत्र होकर ब्रह्मगार्ग्य के साथ अवतार ग्रहण किया। भगवान विष्णु का वर्णन हम शब्दों से नहीं कर सकते हैं वे भगवान विष्णु अजेय अनादि हैं उनका वर्णन करना असम्भव है वे दीनों पर दया करते हैं अपनी इच्छानुकुल भ्रमण करने वाले हैं। लोक में बालक रूप होकर वे खिलौनों की तरह क्रीड़ा करते हैं। यह सारा संसार उन्हीं से व्याप्त है, वे इससे भी परे हैं। अट्ठाइसवें द्वापर युग के कुछ समय बीत जाने पर और धर्म के नाश हो जाने पर भगवान विष्णु बृष्णिवंश में जन्म धारण करते हैं। योगात्मा अपनी योगमाया सभी जीवधारियों को मोहित करके मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं, इस अवतार में सान्दिपन के साथ मानव समाज में लीला दिखाने के लिये भगवान ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया।

उस अवतार में कंस, साल्व, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, पूतना, नाग केशी कुवलयापीड़, मल्लराज, गृहाधिप चाणर इत्यादि असुरों का भगवान ने संहार किया था। उसी अवतार में उन्होंने महान बलशाली वाणासुर की हजार भुजाओं को काटा था। युद्ध में बहुत बलवान नरकासुर और कालयवन का वध किया था। उन्होंने अपने अनुपम तेज से बड़े बड़े राजाओं के बहुमूल्य आभूषणों को छीन लिया था। परम प्रतिभाशाली भगवान विष्णु ने लोक की रक्षा के लिये अवतार लिये हुये थे। इसी कलियुगके सन्ध्यांशा इसमें की समाप्ति हो जायगी, पराशर के पुत्र प्रतापशाली विष्णुयशा, याज्ञवल्क्य के साथ कल्कि नाम के अवतार ग्रहण करेंगे। यह अवतार उनका दसवाँ होगा। इस प्रकार ये बहुत से रथ, हाथी, घोड़े और सेना को साथ लेकर एक भंयकर युद्ध करेंगे। उससमय घोर अधर्म करने वाले पापियोंको गान्धार,पारद,अल्हव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द, दरद, खस, लम्पक, अन्ध्रक, रुद्र, किरात, परम ऐश्वर्यशाली बलशाली मलेच्छों को भगवान समाप्त कर देंगे। भगवान विष्णु पूर्व जन्म में परम बलशाली प्रमिति के रूप में वर्तमान रहते हैं वे ही देवांशभूत होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेते हैं। कलियुग के पूर्ण होने पर वे चन्द्रमा के समान शरीर ग्रहण करके उत्पन्न होते हैं उन भगवान विष्णु के ये अवतार दस प्रसिद्ध हैं। जो समय, शरीर और कारण भगवान के लिये बताये हैं।

पच्चीसवें कल्प के आने पर पच्चीसवर्ष समाप्त हो जाते हैं, उस समय भगवान सभी जीवों का नाश करके तथा सभी मनुष्यों को नष्ट करके अपने क्रूर कर्म से पृथ्वी को शून्य कर देते हैं। उस समय की प्रजा अपने क्रूर कर्म के कारण ही नाश को प्राप्त होती है, लेकिन फिर भी उनको स्वयं ही सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार के रोज के गृह कलेश में निरत रहकर उन सारी प्रजाओं का नाश करके अपने अनुचरों के सहित वे भगवान गंगा यमुना के संगम पर इस घोर युद्ध को समाप्त कर देंगे। इसके बाद कल्कि रूप धारी भगवान के अवसान हो जाने पर और सैनिकों के साथ राजा के नष्ट हो जाने

पर सारी प्रजाऐं आश्रय रहित हो जांयगी,वे आपस में युद्ध करके एक दूसरे को मार डालेंगे वे आपस में एक दूसरे का विश्वास नहीं करेंगे, इस प्रकार बहुत दुखी होकर वे अपने नगर, ग्राम को छोड़ कर भाग जायेंगे। वैदिक धर्म का नाश हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायगा। वे अल्प आयु हो जायेंगे, वन में रहने लगेंगे। वन में पत्र फल फूल मूल खाकर जीवन चलायेंगे। पहनने के लिये चीर, पत्र, और मृगचर्म को धारण करेंगे। उन अल्प आयु वाली प्रजा जिविका के साधन सभी नष्ट हो जायेंगे। कलियुग के उस सन्ध्यांश में प्रजाको नाना तरह के कष्ट उठाने पड़ेंगे कलियुग के साथ उसकी सारी प्रजा नष्ट हो जायगी, इस प्रकार कलियुग के समाप्त होने पर जब पुनः सत्य युग का प्रारम्भ होगा, तब उस समय सारी वस्तुऐं फिर अपनी उसी पहली स्थिति को प्राप्त हो जांयगीं। जो मनुष्य यदु के वंश के वर्णन को सुनता अथवा दूसरों सुनाता है, वह परम सुख को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त होता है॥ ६८

[इति श्री वायु महा पुराण का विष्णुमहात्म्य वर्णन नाम का अट्ठान-वेवां अध्याय समाप्त]

निन्यानवेवां अध्याय

[तुर्वसु आदि ययाति के पुत्रों का वंश वर्णन]

सुतजी बोले— हे ऋषियो! अब मैं! आपको 'तुर्वसु' पुरु और दुह्यु के वश का वर्णन सुनाऊँगा! ययाति के पुत्र तुर्वसु के वहि नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह्नि के गोभानु नाम का पुत्र पैदा हुआ जो कभी किसी से परास्त नहीं हुआ। त्रिसानु राजा के करन्धम नाम के पुत्र पैदा हुये। करन्धम के मरुत्त नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा अविक्षित के मरुत नाम के और एक पुत्र बतलाये जाते हैं। राजा मरुत्त के कोई सन्तान न थी। इस कारण पुरुवंश के राजा दुष्कृत को उसका पुत्र बनाया। राजा ययाति ने वृद्धावस्था को अंगीकार न करके अपने पुत्र तुर्वसु को शाप दे दिया, और इसी शाप के कारण तुर्वसु का वंश नष्ट हो गया।

और वह अन्त में पुरु वंश में मिल गया। उस दुष्कृत राजा के शरुथ नाम के पुत्र पैदा हुये, शरुथ के जनापीड़ नाम के पुत्र पैदा हुये जनापीड़ के चार पाण्डय, केरल, चोल और कुलय नाम के पुत्र पैदा हुये। ये चारों अपने २ देश के स्वामी थे दुह्य के वभ्रु और सेतु नाम के दो पुत्र पैदा हुये। सेतु के अरुद्ध नाम के पुत्र पैदा हुये। और वभु के रिपु नाम के पुत्र पैदा हुये। युद्ध भूमि में रिपु को यावनाश्व राजा ने मार डाला। यह महायुद्ध चौदह वर्ष तक लगातार चलता रहा। अरुद्ध के गान्धार नाम का पुत्र पैदा हुआ। गान्धार राजा के नाम पर ही गान्धार देश बसा है। उसी गान्धार देश में अश्व बहुत उत्तम श्रेणी में पैदा होते हैं।

राजा गान्धार के धर्म नाम का पुत्र पैदा हुआ, धर्म के घृत नाम का पुत्र पैदा हुआ। घृत राजा के दुर्दम नाम का एक पुत्र पैदा हुआ। दुर्दम के प्रचेता नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा प्रचेता के सौ पुत्र पैदा हुये, वे सभी पुत्र अपने २ देश के राजा थे। अनु के तीन समानर, पक्ष और परपक्ष नाम के पुत्र पैदा हुये। समानर के कालानल नाम का परम विद्वान पुत्र पैदा हुआ। कालानल के सृञ्जय नामका परम धर्मात्मा पुत्र पैदा हुआ। सृञ्जय के पुरञ्जय नाम का पुत्र हुआ। पुरञ्जय के जनमेजय और जन्मेजय राजा के महाशाल नाम का पुत्र पैदा हुआ। महाशाल राजा का वैभव इन्द्र के समान बढ़ा हुआ था। महाशाल राजा के महामना नाम का धार्मिक राजा पैदा हुआ महामना राजा सातों द्वीपों का स्वामी यशस्वी चक्रवर्ती सम्राट था। महामना के दो यशस्वी पुत्र पैदा हुये। जिनमें एक का नाम उशीनर और दूसरे का नाम तितिक्षु था। राजा उशीनर की राजवंश में उत्पन्न होने वाली पांच रानी थीं, उन के नाम इस प्रकार हैं। मृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती। राजा उशीनर ने अपनी पांचों स्त्रियों के संयोग से पांच कुल का उद्धार करने वाले पुत्र पैदा किये। ये सभी पुत्र परम तपस्वी और धार्मिक विचार वाले थे। मृगा के मृग नाम का पुत्र था, नवा के नव नाम का पुत्र था, कृमि के कृमि नाम का पुत्र था, दर्वा ने सुव्रत नाम का परम

धार्मिक पुत्र था। और पांचवी रानी दृषद्वती के एक शिवं नाम के एक महान तपस्वी दानी पुत्र पैदा हुये थे। वे राजा शिविऔशीनर शिवि के नाम से प्रसिद्ध हुये। उन्हीं राजा शिवि का पुर शिवपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार राजा मृग का योधेयपुर था, नव राजा का नवराष्ट्र था, कृमि राजा की कृमिपुरी और सुव्रत की अम्बष्ठा नाम की पुरी थी। इसके बाद अब मैं आप को शिवि के पुत्रों का वर्णन सुनाऊँगा।

राजा शिवि के वृषदर्भ, सुवीर, केकय और माडक नाम के चार पुत्र पैदा हुये। ये सभी धर्मात्मा पुत्र शिविगण के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन चारों पुत्रों के कैकय, माडक, वृषदर्भा और सूचीदर्भा प्रसिद्ध नगर थे। अब तितिक्षु की प्रजा का वर्णन करूँगा। राजा तितिक्षु के उशद्रथ नाम का महाबाहु विशाल पुत्र पैदा हुआ वह पूर्व दिशा का यशस्वी राजा था। उशद्रथ के हेम नाम का पुत्र पैदा हुआ। हेम के बलि नाम का परम तपस्वी पुत्र पैदा हुआ। यह बलि राजा वही महान योगि दैत्यराज बलि थे, जिनको बामन भगवान ने बांधा था। राजा के सन्तान न होने पर हेम के वंश का नाश होते देख भगवान ने मानव योनि में हेम के पुत्र रूप में जन्म लिया था। राजा बलि ने पृथ्वी पर चारों वर्णों की सन्तानों को उत्पन्न किया था, उन्होंने अंग, वंग, सुह्म, पुण्ड्र, कलिंग नाम के पुत्रों को पैदा किया। उस राजा बलि के ब्राह्मण और क्षत्रिय वंश दोनों ही कहे जाते हैं। बलि के शुभ कर्मों से प्रसन्न होकर प्रजापति ब्रह्मा जी ने उसको महा योगी, एक कल्प की उम्र वाला युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला, धर्म में परम निष्ठावान् होने का वरदान दिया था। इसके बाद ब्रह्मा जी ने उनसे कहा कि तुमको समस्त त्रिलोकी का दर्शन प्राप्त होगा तुम ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य, शूद्र चारों वर्णों की स्थापना करोगे। प्रजापति ब्रह्मा के इस प्रकार शुभ वचनों को सुनकर राजा बलि बहुत प्रसन्न हुये। वरदान के अनुसार दीर्घकाल के बाद परम विद्वान राजा बलि पुनः अपने निवास स्थान को प्राप्त हुये।

राजा बलि ने अपने पुत्रों के नाम के ही ऊपर उनके देश का नाम रखा है। अब मैं उनके वंशजों का वर्णन करूंगा। राजा बलि के ये पुत्र मुनि के अंश से बलि के क्षेत्रज पुत्र थे। महान प्रतापी दीर्घतमा मुनि के संयोग से बलि की स्त्री सुदेष्णा ने पैदा किये थे।

ऋषि बोले—हे सूतजी! महाराज बलि के पांचों पुत्र किस प्रकार दीर्घतमा ऋषि के संयोग से बलि की स्त्री ने पैदा किये, आप हमको इस विषय में बतलाइये।

ऋषि बोले—हे ऋषिगण! प्राचीन समय में एक अशिज नाम के प्रसिद्ध ऋषि थे. उन ऋषि की स्त्री का नाम ममता था, अशिज के छोटे भाई बृहस्पति जी थे, एक बार वे काम वश होकर ममता के पास गये। ममता ने बृहस्पति जी से अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे बड़े भाई के संयोग से गर्भवती हूं। बृहस्पति! यह हमारा महान गर्भ अपने तेज से बहुत प्रकाशित हो रहा है, यह गर्भावस्था में ही अशिज के अंश से होने के कारण षडंग वेदों का उच्चारण करता है। तुम भी अमोघवीर्य वाले हो, इस कारण ऐसी स्थिति में मैं तुमसे समागम नहीं कर सकूंगी। हे बृहस्पति! इस समय के समाप्त हो जाने के बाद तुम्हारी जभी इच्छा हो वही करना। ममता के इस प्रकार कहने पर भी बृहस्पति महात्मा होकर भी अपनी कामवशी भूत आत्मा को वश में न रख सके। परम धर्मात्मा होकर भी उन्होंने ममता के साथ समागम किया, समागम करते समय गर्भस्थ शिशु ने कहा कि हे तात! आप अपने वीर्य को यहाँ न रखें, क्योंकि यहां मैं पहले से ही बैठा हुआ हूँ, इस जगह दो प्राणियों का निवास करना सम्भव नहीं है, अतः तुम भी अमोघवीर्य वाले हो। उस गर्भस्थ शिशु के इस प्रकार वाक्य सुनकर बृहस्पति ने क्रोधित होकर अपने बड़े भाई अशिज के संयोग से उत्पन्न उस गर्भस्थ बालक को शाप दे दिया, उससे कहा कि तुमने ऐसे सुखमय अवसर पर बाधा पहुँचाई है, तुमने अज्ञानवश मुझसे ऐसा कहा, अतः तुम महान अन्धकार को प्राप्त करोगे। बृह-

स्पति के इस प्रकार शाप देने के कारण ही उस गर्भस्थ शिशु का नाम दीर्घतमा पड़ा था। अशिज ऋषि भी वृहस्पति के समान परम तेजस्वी और यशस्वी थे। उनके पुत्र दीर्घतमा परम ब्रह्मचारी थे, और उनके भाई के आश्रम में रहते थे। सुरभी के वृषभ पुत्र से उन्होंने गौधर्म श्रवण सुना था अशिज के भाई दीर्घतमा के पितृतुल्य वृहस्पति ने उनके निवास स्थान पर एक सुन्दर भवन बनवाया, उसी में वे निवास कर रहे थे, कही से घूमता हुआ एक बृषभ वहां आगया, और गायों के साथ घूमते हुये उस बृषभ ने श्राद्ध के लिए लाये गये कुशों को खालिया। ऋषिवर दीर्घतमा ने उस बृषभ के दोनों सींग पकड़ लिये, उनके सींगों को पकड़ने पर असक्त होकर दीर्घतमा से कहने लगा हे सभी बलशालियों में श्रेष्ठ! आप मुझको छोड़ दीजिये, मैंने आपके समान कोई बलवान पुरुष नहीं देखा। मैंने समस्त पृथ्वी भर का महादेवजी को बहन करते हुए भ्रमण किया है। हे श्रेष्ठ ऋषि! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं, आप मुझको छोड़ दीजिये। आप मुझसे वरदान मांगिये। बृषभ के इस प्रकार कहने पर भी दीर्घतमा ने उसको नहीं छोड़ा, और कहा कि तुम चार पैर वाले हो तब भी दूसरे की वस्तु को खारहे थे अतः मैं तुमको जीवित नही छोड़ूँगा। दीर्घतमा के इस प्रकार कहने पर वृषभ पुनः कहने लगा कि हे तात! मेरे लिये कोई पाप नहीं है, कोई चोरी नहीं हैं। मुझको यह नहीं पता कि मुझको क्या खाना चाहिये, क्या पीना चाहिये। इसी प्रकार यह भी नहीं मालूम कि मुझको क्या करना चाहिये। मुझको कहां जाना चाहिये कहां न जाना चाहिए हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हम पशुओं को पाप नहीं लगता, गायों का तो यही धर्म कहा गया है। बृषभ के इस प्रकार गायों के नाम को सुनकर दीर्घतमा बहुत चकित हुये, उन्होंने परम भक्ति और श्रद्धा से वृषभ को प्रसन्न किया और प्रषव ने इस प्रकार प्रसन्न होकर प्रस्थान किया वृषभ के चले जाने के बाद दीर्घतमा ऋषि ने गौधर्म के ऊपर विचार किया, और मन से उसे ग्रहण करके सदा उसी में भक्ति रखकर गायों के पालनमें निरत रहने लगे।